ओ३म्

विश्वदर्शन

ग्रन्थकर्ता

स्वानुभवी पं० रामरत्न थपल्याल

संवत् १९९६

द्वितीयावृत्ति १०००]　　[मूल्य २।)

संक्षिप्त विषय-वर्णन तथा सूची

पृष्ठ

समर्पण

परमात्मा जिस तरह सृष्टि की सारी वस्तुओं को केवल दूसरों के हित के लिये पैदा करता है, वैसे ही पिता और माता सन्तान का सारा उपकार करते है। सन्तान के लिये पिता और माता प्रत्यक्ष ईश्वर है।

मेरे पिता और माता ने इस शरीर से न जाने कितनी आशायें रखकर इसका पालन पोषण किया। लेकिन इस तुच्छ शरीर से मै उनकी कुछ भी सेवा न कर सका। इसलिये स्वानुभव पुस्तक "विश्वदर्शन" को अपने पूज्य पिता पं० धर्मदत्त व पूज्य माता श्री सरस्वती की सेवा में संसारहित के लिये सविनय समर्पित करता हूँ।

आपका—

रामरत्न

भूमिका

मैं उस सत्य आनन्द और ज्ञानमय सच्चिदानन्द परमात्मा को कोटिशः नमस्कार करता हूं, जो अपनी सत्य प्रेरणा से संसार-कल्याण के लिये अपने भक्तों की बुद्धि में सत्य रूप से प्रकाशित होकर सत्य ज्ञान उत्पन्न करता है। उसकी सत्त्वगुण-शक्ति से विश्वविराट् और प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियों को उसके सत्य ज्ञान के विना आनन्द नहीं हो सकता।

मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि मैं निराधार "विश्वदर्शन" को लिख सकता। किन्तु परमात्मा सर्वसमर्थ है और आत्मा परमात्मा ही है। यह पुस्तक केवल आत्मा का अनुभवमात्र है। विना शुद्ध अनुभव के इसका एक शब्द भी नहीं लिखा गया। शुद्ध ज्ञान से कार्य करना कल्याणकर है। महात्माजन अपने कल्याण के साथ साथ संसार का कल्याण करने मे समर्थ होते है।

आत्मा सर्वसमर्थ है। उसकी सामर्थ्य में कोई कार्य दुर्लभ नहीं। स्वप्न की सृष्टि, जिसको हम स्वप्न में देखते है, क्या उस को रचनेवाला कोई असमर्थ हो सकता है? अगर वह असमर्थ माना जाय तो स्वप्न की सृष्टि रचने में कौन समर्थ हो रहा है? भेद सिर्फ इतना है कि समर्थ और सर्वज्ञ जिस परदे पर अपनी अनन्त सामर्थ्य से स्वप्न की सृष्टि रचता है, वह असत्य का है। इसलिये स्वप्न की सृष्टि जैसी स्वप्न में बनती है, जागने पर वैसी सत्य नहीं भासती। यदि असत्य परदे के स्थान में सत्य का परदा होता तो स्वप्न की सृष्टि भी सत्य होती।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्वप्न का सृष्टि-कर्ता स्वप्न की अनेक सृष्टि रचने को प्रत्यक्ष और सर्वसमर्थ है। किन्तु जिस पर स्वप्न की सृष्टि का निर्माण होता है, वह असत्य है। इसलिये जागने पर स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती। अब आप स्वप्न को सत्य कहोगे या असत्य? क्योंकि आपको स्वप्न का स्मरण तो हो रहा है, लेकिन स्वप्न की सृष्टि नहीं दिखाई दे रही है।

अगर आप कहें कि स्वप्न असत्य है, तो आपका स्मरण सत्य कैसे बना है। अगर आप कहें कि स्वप्न सत्य है, तो जागने पर स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष क्यों नहीं दिखाई देती, क्योंकि सत्य प्रत्यक्ष है।

मैं अब आपको बताता हूँ कि स्वप्न सत्य है या असत्य। स्वप्न का कर्ता तो सत्य है, इसलिये उसका कार्य भी सत्य है, जो जागने पर आपको स्मरण हो रहा है। लेकिन स्वप्न के कर्ता ने जिस आकार के धरातल पर स्वप्न की सृष्टि को रचा, वह असत्य था, जो निद्रा से जागने पर नष्ट हो जाता है। इसलिये उसमें बनी हुई सृष्टि भी नष्ट हो जाती है, जिससे जागते ही स्वप्न की सृष्टि अप्रत्यक्ष होती है।

यह दशा तो स्वप्न की है। लेकिन जीवन और मरण में क्या होता है? ज़रा सावधान होकर सोचो—हम कौन हैं और कब से हैं? बस इसी पर निर्णय हो जायेगा। जिस शरीर में हम हैं, उससे पहिले हम क्या थे? और उससे भी पहिले क्या थे? इस शरीर से पहले भी हम अवश्य कुछ थे और उससे भी पहले कुछ थे। इसी तरह अगर हम अपने अस्तित्व की हद ढूँढे तो एक दिन अपनी असलियत को समझ सकते हैं।

यदि आप कहें कि हम पञ्चतत्त्व के योग से बने हैं और उनके

े नाश होने पर कुछ शेष नहीं रहता। इस मत के अनुसार भी मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर तो अवश्य रहता है जिसको आप देख रहे हैं, उसको जलाया जाय या धरती पर गाड़ा जाय फिर भी वह कुछ रह जाता है, क्योंकि वह भस्म होकर या सड़ गलकर रूपान्तर से पञ्चतत्त्व में विद्यमान रहता है। लेकिन अब ज़रा फिर विचार करो कि हमारा शरीर नाश होकर तत्त्वों में जाता है, लेकिन तत्त्व नाश होकर कहाँ जाते हैं।

के विस्तार मे रहने से आपने अपनी सर्वज्ञता का ज्ञान खो दिया है, अज्ञान के कारण अल्पज्ञता आ गई है। जिन महात्माओ को आत्मज्ञान द्वारा सदैव यह दृश्य जैसा का तैसा भास रहा है, वे किसी शरीर मे भी सर्वज्ञ होते है।

इस पुस्तक के विषय विश्वजनो के हितार्थ संक्षेप मे लिखे गये हैं। हरएक विषय इतने गहन है कि मै इस अवस्था मे आजन्म पर्यन्त एक विषय को भी विस्तृत लिखने का साहस करता तो नही लिख सकता। यह भी सम्भव है कि मैं जिस रूप से प्रत्येक विषय को देख रहा हूँ, लिखने मे उनका रूप जैसा का तैसा कहाँ तक वर्णन हो सका।

इस ग्रन्थ को केवल स्व-अनुभव लिखना, विश्वजनों को आश्चर्यजनक प्रतीत होगा। प्राय. पिण्डो के वर्णन मे तो विशेष आश्चर्य होगा। मै इस विषय मे एक छोटा सा उदाहरण देता हूँ। एक कारतकार अपनी खेती मे ज्ञान और परिश्रम से ईख पैदाकर उससे मिस्री बनाना जानता है। एक दूसरा आदमी उससे पूछता है कि इस मिस्री को तुमने किस बाजार से खरीदा। कृषक कहता है, मैने अपने खेत मे ईख पैदाकर अपने आप मिस्री बनाई है। लेकिन पूछनेवाले को विश्वास नही होता, क्योकि उसके ज्ञान मैं तो मिस्री बाजार मे होती है। अगर वह समझदार होता तो मिस्री बनानेवाले के प्रति अविश्वास कभी नही करता। क्योकि किसी भी बाजार मे जो मिस्री देखने मे आती है, वह अवश्य किसी खेत मैं ईख के रूप मे पैदा हुई होगी और उसको किसी न किसी ने बनाया होगा। फिर कृपक के बनाने मे आश्चर्य क्या? इसी तरह समस्त ग्रन्थ किसी न किसी बुद्धिरूप खेत मे उत्पन्न हुए है और किसी न किसी ने लिखकर उनको बनाया है।

सर्वशास्त्र बुद्धि के अधीन है, न कि बुद्धि शास्त्रों के अधीन है। जो सर्वज्ञ है, उनके ज्ञान मे कोई भ्रम नही हो सकता। भ्रम केवल अज्ञान और अल्पज्ञता के अन्दर आ सकता है।

प्रायः खगोल के विज्ञान-वेत्ताओं को पिण्डों के वर्णन मे भी सन्देह होगा कि पृथ्वी में रहनेवाले मनुष्य का कथन इस विषय में कैसे प्रमाणित माना जाय। क्योंकि आजकल यन्त्रों के आधार से विश्वास दिलाने पर तो विश्वास हो सकता है, लेकिन स्व-अनुभव विश्वास कैसे माना जाय।

इस विषय पर प्रश्न किया जाता है कि प्रथम तो यन्त्रों के आधार पर बृहत् आकाश के पिण्डों का सत्य सत्य निर्णय करना असम्भव है। दूसरा यदि यन्त्रों के ही आधार पर भी माना जाय तो हम जिस वस्तु को साधारण दृष्टि से देखते है, अगर उसी को दूरबीन आदि यन्त्रों से देखे तो उसके रूप में छोटाई वडाई का अन्तर मालूम होता है। अगर उसी वस्तु को किसी अन्य बड़े यन्त्र से देखें तो उसके रूप में विशेष अधिक छोटाई वडाई का अन्तर मालूम होता है। अब हम उस वस्तु का असली स्वरूप कौन सा माने जो साधारण दृष्टि से मालूम पडता है उसको, या जो दूरबीन से देखा जाता है उसको, या जो वड़े यन्त्र से देखा जाता है उसको मानें। निर्णय करने पर बड़ी कठिन समस्या हो जाती है।

यदि साधारण दृष्टि से देखनेवाले स्वरूप को सत्य माने, तो यन्त्रों के आधार पर देखना असत्य प्रतीत होता है। यदि यन्त्रों के आधार से देखना सत्य मानें तो साधारण दृष्टि असत्य होती है। और यदि ऐसा माने कि साधारण दृष्टि ही असत्य है तो सिद्ध होता है कि साधारण दृष्टि जो दूरबीन आदि यन्त्रों से देखती है, वह भी असत्य है। अब सत्य दृष्टि कौन सी मानी जाय।

अगर हम सत्य देखना चाहें तो साधारण दृष्टि से भी नेत्रों द्वारा किसी वस्तु के सत्य स्वरूप को नहीं देख सकते। क्योंकि उपाधिमय दूरबीन आदि यन्त्रों की तरह मायाकृत आँखे भी एक तरह उपाधिमय है। क्योंकि देखने का काम प्रकाश करता है, आँखे तो उसी प्रकाश से देखती है, इसलिये अन्धी आँखों से (प्रकाश के विना) रूप का ज्ञान नहीं होता।

अगर हम आँखों के जरिये भी देखना छोड़कर स्वतः प्रकाश से ही देखें तो उसमें किसी वस्तु का असली स्वरूप देख सकते है।

अब प्रश्न यह होता है कि अगर आँखो से भी न देखा जाय तो असली प्रकाश कहाँ है, जो देख सकता है? मै आपको याद दिलाता हूँ कि नेत्रों की सहायता के विना आप उस प्रकाश से कभी कभी देखते है। आपने कभी स्वप्न देखा होगा। स्वप्न की सृष्टि जो आपने देखी है, क्या वह नेत्रों के जरिये देखी गई है? नहीं, नेत्रों से नहीं देखी गयी, क्योंकि निद्रावस्था में नेत्र बन्द रहते है। अब ज़रा सोचो कि स्वप्न की सृष्टि कैसे देखी गई। उसी प्रकाश से देखी गई, जो तुम्हारे नेत्रों मे आकर देखता है।

लेकिन स्वप्न की सृष्टि भी शुद्ध प्रकाश मे नहीं देखी जाती। निद्रावस्था मे अज्ञान का परदा जो जडत्व से प्राणियों के शरीर को ढकता है, वह शुद्ध प्रकाश में उपाधिरूप से रहता है। यदि उसके स्थान मे पूर्ण चैतन्य अवस्था प्राप्त हो सके और उससे देखा जाय तो विश्वविराट् के अन्तर्गत अणु से ब्रह्माण्ड पर्यन्त का स्वरूप यथार्थ देखा जायेगा। उस देखे हुए को ही सत्य मानिये।

यन्त्रों या साधारण दृष्टि से दूर दूर का सत्य-निरीक्षण छोड़कर निकट से निकट की दूरी नाप के विषय मे कहता हूँ। ४-५ मनुष्यों से पैमाने से एक इञ्च की दूरी नपवाइये। जब सब अपनी अपनी बुद्धिमत्ता से एक इञ्च की दूरी नाप चुके हो तब एक अन्य किसी

निरीक्षक से सबके नाप की जाँच कराइये। देखने से सब मे अणु अणु मात्र का अवश्य फर्क मालूम होगा। फिर भी निश्चय नही होता कि किस का नाप इन्च की दूरी मे सत्य है। सत्य दृष्टि से पैमाने का स्वरूप देखा जाता तो इन्च की दूरी भी सही निकलती।

सर्वसाधारण की जानकारी के लिये लेखन-शैली साधारण भाषा मे लिखी गई है। शृंगारप्रेमियों को यह विषय शायद अनरस सा मालूम होगा, क्योकि वैज्ञानिक विषय प्रथम तो स्वतः ही रसिकों को नीरस मालूम होता है, फिर शृंगारप्रेमियों को तो कहना ही क्या है। मेरा ध्यान तो केवल लक्ष्य के चित्र खीचने पर रहा। विषयों के ज्ञान होने पर लौकिक जनाने के लिये प्रत्येक विषय का क्रम (आदि, मध्य, अन्त) निराधार रखना मेरे लिये कितना कठिन काम था, पण्डितजन इसका अनुभव कर सकते है।

मैं गृहस्थाश्रम की पवित्रता पर देवियों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित करता हूँ और सती देवियों का यथेष्ट आदर करता हूँ। इस ग्रन्थ के निर्माण मे मेरी अर्द्धांङ्गिनी श्रीप्रतिमादेवी पूर्ण सहायक रही। यद्यपि वे पण्डिता नही है, तथापि उन्होंने गृहस्थी के सारे कार्यभारों को अपने ऊपर उठाकर मेरी शान्ति और स्वतन्त्रता मे सती स्त्रियों की तरह पूर्ण सहायता की, जिस शान्ति और स्वतन्त्रता के विना ग्रन्थ का निर्माण करना मेरे लिये कठिन था।

मैं पुस्तक पर विद्वान् सम्मतिदाताओ का यथेष्ट आदर करता हूँ।

क्षुधा के होते हुए उसकी पूर्ति का ध्यान होता है। भोगों की पूर्ति होने पर प्रतिष्ठा की, उसके होने पर संसार के प्रभुत्व की और प्रभुत्व-भोगों की पूर्ति पर ईश्वरीय ज्ञान की इच्छा होती है।

प्राचीन भारत इस सर्वोच्च सभ्यता के शिखर पर पहुँच चुका

था। लेकिन जितना उत्थान हुआ था, उसके पश्चात् वर्तमान युग तक क्रमशः उतना ही पतन हो गया है। किसी समय जिस भारत के महापुरुष ब्रह्मज्ञान (सत्यज्ञान) के प्रभाव से अपने शरीरों को कल्पो तक बलवान् और सुरक्षित रखते थे, वर्तमान समय मे उस भारत के लाल नाशकारी भोगों के मिथ्या आहार व्यवहारों से रोगी और निर्बल होते हुए केवल ४०-५० वर्ष की ही अवस्था मे बूढ़े बनकर काल के ग्रास बन जाते है। इस ध्येय पर विश्वदर्शन बनाया गया है। जिसमे शरीरसम्बन्धी प्रत्येक विषय का वर्णन किया गया है। और यह बात अच्छी तरह समझायी गई है कि पदार्थों के किन किन अंशों से शरीर रक्षित और पोषित होता है और किन किन अंशों से उसका शोषण व विनाश होता है।

इस पुस्तक से मनुष्यमात्र को अपने कल्याण का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सर्वसाधारण के हितार्थ यह पुस्तक सरल हिन्दी गद्य भाषा मे लिखी गई है। इस ग्रन्थ मे शरीररचना, तत्त्वविज्ञान, पिण्डो का पारस्परिक सम्बन्ध और वनस्पति इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है। प्रथम संस्करण से इसमें विशेष संशोधन किया गया है। शुभम्।

श्रीपूज्य पिता पं० धर्मदत्तजी
व श्रीपूज्या माता सरस्वतीजी
के तनय स्वानुभवी रामरत्न।

ॐ तत्सत्

विश्वदर्शन

अध्याय—१

हम और हमारी आवश्यकता

इस विराट्—विश्व मे अनन्त पिण्ड है। हमारी पृथ्वी जिस पर हम रहते है, वह भी विश्व का एक पिण्ड है। इस पृथ्वी पर अनेक जाति के अनन्त जीव रहते हैं। उनमे से मनुष्य भी एक प्रकार का जीव है। सब जीव अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अपने जीवन में जीवन-पर्यंत नित्य संघर्षित होते रहते है। इसका नाम जीवन-संग्राम है। खाना-पीना, चलना-फिरना, पढ़ना-लिखना, खेती करना, वाणिज्य-व्यवसाय करना और कलाकौशल-नाटकादि जितने भी कार्य किए जाते हैं, उन सब में संघर्षित होकर जीवन-संग्राम किया जाता है। इस जीवन-संग्राम से जीवों मे सामाजिक और राजनैतिक संघर्ष उपस्थित होते हैं। मनुष्यों के व्यक्तिगत, सामाजिक और

राजनैतिक सग्राम की तरह अन्य जीवों मे भी ये संग्राम विद्यमान रहते है।

शहद की मक्खियॉ अपनी-अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिये नित्य दैनिक संग्राम मे जुटी रहती है, और अपनी-अपनी व्यक्तिगत—आवश्यकता की पूर्ति के लिये सब शहद की मक्खियॉ जुटकर एक सामाजिक संग्राम का निर्माण करती है। उस सग्राम को खूबी से निभाने के लिये उनमें एक राजनैतिक व्यवस्था बनी रहती है।

बन्दरो मे भी व्यक्तित्व, आवश्यकता-पूर्ति के लिये सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था बनी रहती है। टिड्डी और चिउँटियों मे भी इस प्रकार की व्यवस्थाये मिलती है। इसी तरह अनेक जीवों म मनुष्यो की व्यवस्था की तरह व्यवस्थाये मिलती है। लेकिन मनुष्य और पृथ्वी के अन्य जीवों मे इस प्रकार की व्यवस्थाओं की रचना केवल उनके आनन्द की प्राप्ति है। इसलिये मनुष्य और पृथ्वी पर के सब जीवो के जीवन-संग्राम का ध्येय केवल आनन्द की प्राप्ति है।

यह अलग बात है कि मनुष्य व अन्य जीव अपने-अपने अज्ञान के कारण बजाय आनन्द के दुःख की ओर पहुॅच जायँ, लेकिन जीवों के जीवन-संग्राम का उद्देश्य आनन्द की ही प्राप्ति है।

यह आनन्द क्या है? जिसकी प्राप्ति सब जीवो का ध्येय है। साधारणतया हम देखते हैं कि हम अथवा सारा मनुष्य-

समुदाय उज्ज्वल वस्त्र-आभूषण, उज्ज्वल खान-पान, उज्ज्वल स्त्री-पुत्र, उज्ज्वल रहन-सहन और उज्ज्वल भवन-आँगन इत्यादि की प्राप्ति ही आनन्द समझते है। इसमें जितनी उत्तरोत्तर उज्ज्वलता हमारे देखने और सुनने मे आती है, उतना ही हमारे आनन्द की लालसा आगे बढ़ती है।

मनुष्यों के अलावा अन्य जीवों में भी उज्ज्वलता से आनन्द मालूम होता है। पतंग और अनेक कीट आनन्द की लालसा में दीपक आदि के उज्ज्वल प्रकाश में भस्म तक हो जाते है। उज्ज्वल ध्वनि से मृग और अजगर भी मुग्ध हो जाते है। इसी तरह सब जीवों का आनन्द केवल उज्ज्वलता पर ही निर्भर मालूम होता है।

अब हम सब वस्तुओं की उज्ज्वलता के साथ जिनमें हम साधारणतया आनन्द समझते है, उनसे आगे अपने सामने की महान् उज्ज्वलता पर चलते है। उससे हमे क्या मिलता है।

हमारे और सब जीवों के सामने महान् उज्ज्वलता का पुञ्ज सूर्य हैं, जिनके प्रकाश से दिन होता है, और उनके प्रकाश के विना रात्रि होती है। सूर्य के प्रकाश से दिन में हमें क्या मिलता है, और सूर्य के प्रकाश के विना रात्रि के अन्धकार से हमें क्या मिलता है।

हम देखते हैं, रात्रि को जब अन्धकार होता है और उस अन्धकार से मनुष्य आदि बहुत-से जीव निद्रा-वश एक तरह अचेतन-से हो जाते हैं, तब सूर्य के प्रकाश से प्रातः ही सब

जीव जाग्रत् होकर चेतन हो जाते है। रात्रि के अन्धकार मे जैसे सावन की, आमावास्या की रात्रि का अन्धकार हो, तो बस्ती से बाहर जाने मे अधिक लोगों को भय-सा मालूम होता है, और अधिकतर बहुत से जीव भी अन्धकार में चलते फिरते दिखाई नही देते। इसलिये अन्धकार में भय मालूम होता है, लेकिन दिन के होते ही सूर्य के प्रकाश में सर्वत्र जाने में जीव-मात्र को निर्भयता मालूम होती है। इसलिये उज्ज्वलता मे निर्भयता मिलती है। रात्रि के अन्धकार मे यानी घने अन्धकार मे किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान नही हो सकता। किंतु दिन मे सूर्य के प्रकाश से सब वस्तुओं के रूप-रंग का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये दिन मे सूर्य की उज्ज्वलता से हमे स्वतः ही चेतनता, निर्भयता, और ज्ञान प्राप्त होता है, और रात्रि के अन्धकार से अचेतनता, भय और अज्ञान प्राप्त होता है।

लेकिन सूर्य की उज्ज्वलता अथवा प्रकाश के अतिरिक्त विश्व मे चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि और मणि आदि अन्य पदार्थों की उज्ज्वलता अथवा प्रकाश से भी हमें आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये यह बात सिद्ध होती है कि सूर्य से भी आगे कोई बढ़कर महान् उज्ज्वलता है; जिससे सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि और विश्व के अन्य पदार्थ प्रकाशित होते है। उसी महाप्रकाश मे पूर्ण आनन्द है। उसकी प्राप्ति हमारी और सब जीवों के आनन्द की सीमा है। उससे हमें महान् चेतनता, निर्भयता और महान् ज्ञान प्राप्त होता

है। चेतनता, निर्भयता और महान् ज्ञान ही परम सुख के कारण है।

इसी तरह रात्रि के अन्धकार की अपेक्षा बृहत् आकाश मे हम महान् अन्धकार देखते हैं। अधिकाधिक अन्धकार मे हम पता चला सकते है कि अधिकाधिक अचेतनता, भय और अज्ञान होता है। भय और अज्ञान ही दुःख के कारण हैं।

इसलिये मनुष्य और सब जीव इन्ही प्रकाश और अन्धकार रहस्यों के द्वन्द्वों में संघर्षित होते रहते है। बुद्धि के ज्ञान और अज्ञान ही इन रहस्यों की प्राप्ति को लक्षित कर सकते है। ज्ञान से हम आनन्द की अन्तिम सीमा प्राप्त कर सकते है और अज्ञान के कारण दुःख की अन्तिम हद को पहुँच सकते है।

इन दोनो रहस्यों 'अथवा आनन्द की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये जीव-मात्र में सदैव जीवन-संग्राम बना रहता है। जीवों के जीवन का मुख्य उद्देश्य इन रहस्यों को जानना है, लेकिन अन्यान्य जीवों में मनुष्य जीव ही एक ऐसा है, जिसकी बुद्धि इन रहस्यों के समझने में दक्ष हो सकती है। इसलिये मनुष्य-बुद्धि का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि इस भूल-भुलैया विश्व मे सुख और दुःख के रहस्यों को पहचानकर उनको मनुष्य-मात्र के सामने रखा दे।

इस ध्येय पर विश्व का ज्ञान होना परम आवश्यक है। सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये प्रथम विश्व को

समझना आवश्यक है। विश्व मे अनेक प्रकार की विभिन्नता प्रतीत होने पर सुख और दु ख के रहस्यों को अच्छी तरह पहचानना असम्भव-सा हो जाता है। साधारण बुद्धि सुख को दु ख और दु.ख को सुख समझने लगती है।

इसलिये सुख अथवा आनन्द को प्राप्त करने मे प्रथम विश्व के पदार्थों को जानना ही मनुष्यादि जीवों के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। समस्त विश्व की उत्पत्ति दो प्रकार के मौलिक महातत्त्वो से मिलती है। एक प्रकार का पूर्ण महातत्त्व और दूसरे प्रकार का अपूर्ण तत्त्व से। पूर्ण तत्त्व गतिरहित आधार और प्रकाश-स्वरूप है और अपूर्ण तत्त्व चंचल, आधेय और अन्धकार स्वरूप है।

लौकिक सृष्टि के साथ जीवो की उत्पत्ति मे उन मौलिक तत्त्वो को शुक्र और रज कह सकते है। समस्त जीवों की उत्पत्ति शुक्र और रज से होती है। शुक्र मे स्थिरता धारणता और उज्ज्वलता होती है। लेकिन रज मे गति, आधेयता और कालापन अथवा अन्धकार होता है।

इसी प्रकार समस्त विश्व की बनावट महाशुक्र और महारज से बनी है। महाशुक्र को हम पुरुष और महारज को प्रकृति नाम से कहते है। पुरुष पूर्ण, स्वतंत्र, आधार और प्रकाशमय है, लेकिन प्रकृति अपूर्ण आधीन, आधेय और अन्धकारमय होती है, समस्त विश्व इन्ही पूर्ण और अपूर्ण मौलिक तत्त्वों के योग से बनता है।

जीवों की बनावट मे भी एक पूर्ण तत्त्व और दूसरा अपूर्ण तत्त्व है। पूर्ण तत्त्व के साथ हमारा अपूर्ण तत्त्व ही पूर्ण होने की चेष्टा आनन्द समझता है, किन्तु विश्व के अपूर्ण पदार्थों की सहायता से अपूर्ण को पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। हमारी इच्छा नित्य हमारे शरीर के अपूर्ण हिस्से को पूर्ण होने की चेष्टा मे लगी रहती है, किन्तु बुद्धि के अज्ञान के वश हम विश्व के अपूर्ण पदार्थों के भोगों मे पूर्णता का भोग ढूँढ़ते रहते है, इसलिये हमारी इच्छा और हमारे कार्यों मे विरोध पाया जाता है, जिससे हम आनन्द चाहते हुए भी आनन्द प्राप्त नही कर सकते। आनन्द को प्राप्त करने मे हमारे लिये सीढ़ियाँ इस प्रकार है।

प्रथम विश्व को समझने के लिए शुद्ध चैतन्य बुद्धि की आवश्यकता है। निर्मलता के बिना बुद्धि में शुद्ध चैतन्यता का अभाव रहता है। आत्मिक प्रकाश के बिना बुद्धि में निर्मलता नही आती। शुक्र के बिना बुद्धि प्रकाशित नही हो सकती। इंद्रियों के विकार-दमन के बिना शुक्र का रक्षण नहीं हो सकता। मन, वचन, कर्म आदि से सर्वथा चोरी के अभाव के बिना इंद्रियों के विकार का दमन नही हो सकता। अंत:करण और बाह्य सत्य आचरण के बिना चोरी का अभाव नही हो सकता। पूर्ण पवित्रता के बिना सत्य का आचरण नही हो सकता। अहिंसा के बिना पूर्ण पवित्रता नही आ सकती। तप के बिना अहिंसा का आचरण नहीं हो सकता। निर्मल शिक्षा के बिना तप की ओर झुकने की रुचि नही होती, और धीरता के बिना

तप नहीं हो सकता। इस प्रकार के मानसिक सुधार के विना मनुष्यों को वास्तविक सुख का अनुभव तक भी नहीं हो सकता। विश्वदर्शन के लिए प्रथम इस प्रकार के मानसिक सुधार की आवश्यकता है और फिर परम सुख की प्राप्ति के लिए विश्व के रहस्यों को जानने की आवश्यकता है।

अध्याय—२

पुरुष प्रकृति के योग से विश्व की रचना

१. महाचैतन्य पुरुष—जो निर्विकार, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है वही विश्व का चैतन्य स्वरूप है। जिसकी सत्ता से जड़ प्रकृति चेतन प्रतीत होती है, उसको चैतन्य कहते है। वह नित्य, अटल, एकरूप है, उसका परिवर्तन नही होता। वह अविनाशी, सनातन और सत्य है। उसकी सत्ता से विश्व का सृजन करनेवाली महाजागृति उत्पन्न होती है। विद्रित करनेवाली क्रिया को वोधित करनेवाली शक्ति का नाम महाजागृति है, जागृति के सञ्चार में तमोगुण उत्पन्न होता है।

तमोगुण की उत्पत्ति से जागृति का स्वाभाविक गुण तमोगुण है। तमोगुण के दो भेद होते है—पोषित और नाशित। उसके पोषित भेद में जागृति विद्रित होकर विश्व मे सब तत्त्वों, पिंडों, प्राणियों और वनस्पति आदि सबका विकास करती है।

तमोगुण के नाशित भेद मे जागृति, लुप्त, प्राणियो का मरण और पदार्थों का पतन होता है।

इसलिए तमोगुण वह है, जिससे विश्व में जाग्रत, लुप्त,

अन्तिम चैतन्य में लुप्त होती है। इसलिये जागृत और लुप्त दोनों अवस्थाओ को धारण और रक्षण करनेवाला आधार चैतन्य है।

अपना अस्तित्व छोड़कर दूसरे में मिलने को लुप्त अथवा लोप कहते है। जागृति जागृत होने से प्रथम चैतन्य में लुप्त रहती है। उस अवस्था में चैतन्य अपनी अविनाशी सत्ता से लुप्त जागृति की रक्षा करता हुआ विश्व की उत्पत्ति के आरम्भ में उसको जागृत करता है।

चैतन्य जागृति का आधार और रक्षक होने से उसका पति है। इसलिये वह पुरुष है। लेकिन जागृति का चैतन्य से भिन्न गुण है। इसलिये जागृत आधेय और रक्षित होने के कारण पुरुष से भिन्न स्त्री है। चैतन्य पुल्लिग और जागृति स्त्री-लिङ्ग हैं। उस स्त्री लिङ्ग जागृत, स्थिति, और लुप्त तीनो अवस्थाओं का एक ही नाम प्रकृति है।

प्रकृति की तीन अवस्था होती है—जागृत, स्थिति और लुप्त। जब अचेतन प्रकृति चैतन्य की सत्ता से चेतन और ज्ञानमय होती है, तब उसको जागृत कहते है। अस्तित्व-रहित प्रकृति चैतन्य की सामर्थ्य से विश्व के स्वरूप मे जो सत्य प्रतीत होती है, उसको स्थिति कहते है। प्रकृति अपने पूर्ण तमोगुण से जब विश्व के प्राकृतिक अस्तित्व को मिटाकर अन्धकार मे लय कर देती है और उस अन्धकार को भी मिटाकर अन्तिम चैतन्य आधार मे आधेय होकर चैतन्य

क्रिया विनाशी बनकर उनके आकार पर उग्र तमोगुण फैला देती है, सर्वनाश करनेवाले तमोगुण को उग्र तमोगुण कहते हैं। स्थितियों के नाश होने के पश्चात् उग्र तमोगुण भी नाश-क्रिया से नाश होने लगता है। और अनन्त काल मे वह घटते घटते केवल सूक्ष्म गुण-मात्र रहकर क्रियारूप शक्ति मे समा जाता है। उस अवस्था मे क्रिया-शक्ति नाशिनी बनी रहती है। वह अपने विनाश गुण से केवल शक्ति-मात्र रहकर चैतन्य आधार मे आधेय होने से चैतन्य की सत्ता से रक्षित होकर अविनाशी बन जाती है।

जिससे तमोगुण उत्पन्न होता है और जिसमे समाता है, उसको शक्ति कहते है।

३. महासत्त्वगुण—चैतन्य अविनाशी और सत्य है। सत्य होने से उसकी रक्षा-रूप अविनाशी सत्ता को सत्त्वगुण कहते हैं। जिससे शक्ति रक्षित होकर विनाश-क्रिया से परिवर्तित होकर विश्व को उत्पन्न करनेवाली सृजन-क्रिया बनती है।

अनन्त चैतन्य के जिस अंश मे जागृत-रूप मे शक्ति अथवा प्रकृति रक्षित और पोषित होती है, उसी को महासत्त्वगुण अथवा सत्त्वगुण कहते हैं; चैतन्य के प्रकाश और प्रकृति के पोषित तमोगुण से सूक्ष्म और असीम महासत्त्वगुण का स्वरूप विश्व की उत्पत्ति के आरम्भ मे प्रातःकाल पूर्व दिशा के गगन-मण्डल की तरह शुक्ल होता है। क्योंकि प्रकाश में कुछ अंन्धकार का योग होने से शुक्ल वर्ण होता है।

करनेवाला है। उससे आधेय-रूप प्रकृति जागृत होकर विश्व को उत्पन्न करती है। विश्व की उत्पत्ति में प्रकृति की उस अवस्था को प्रथम अवस्था कह सकते है। अथवा उसको विश्व की बुद्धि-रूप प्रकृति कहना चाहिये।

जैसे प्राणियों की उत्पत्ति के समय आत्मा मे प्रथम बुद्धि-रूप प्रकृति आधेय होकर प्राणियों के स्थूल शरीर रचने का कारण बनती है, ठीक वैसे ही चैतन्य के सत्त्वगुण आधार मे आधेय-रूप महाप्रकृति महाजागृत अवस्था मे प्रथम विश्व की बुद्धि बनकर विश्व का विकास करती है।

यद्यपि महाजागृति तमोगुणी होती है और वह सत्त्वगुण से पोपित होकर अपने गुण में बढ़ती रहती है, तथापि सात्त्वगुण के अनन्त प्रकाश के साथ उसके तमोगुण का जो-योग होता है, वह अपने गुण में नहीं बर्तता। किन्तु सत्त्वगुण की सामर्थ्य से महाप्रकृति विश्व की उत्पत्ति मे सतोगुणी और दिव्यरूपा होती है। भारतीय शास्त्रों मे प्रकृति की उस अवस्था को महालक्ष्मी कहते है और उसमे ज्ञान उत्पन्न होता है। वह जैसे-जैसे अपने तमोगुण मे बढ़ती रहती है, वैसे-ही-वैसे उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। महासत्त्वगुण की सत्ता से पोपित और चेतन तमोगुण का बढ़ना ही महा-जागृति का अपनी अवस्था मे बढ़ना है। वह जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे-ही-वैसे विश्व का आकार बनता रहता है।

४ महारजोगुण—महाजागृति की पूर्ण तरुणावस्था में उसका

तरुण अथवा (युवा) तमोगुण। चैतन्य की सत्ता से पोषित और विद्धित होने पर विश्व को रचनेवाला महारचनात्मक स्वरूप बनता है। सत्त्व और तम के समान मिश्रित योग से उसमे एक तीसरा गुण उत्पन्न हो जाता है। उसको महारजोगुण कहते है। उसका वर्ण (स्वरूप) महासत्त्वगुण के प्रकाश और युवा तमोगुण के सम्मिलित योग से सूर्योदय-काल, पूर्व दिशा के गगनमण्डल की तरह गौर हो जाता है।

प्रकाश और अन्धकार के समान मिश्रित योग से जो स्वरूप बनता है, उसको गौर वर्ण कहते है। जैसे सूर्योदय-काल सूर्य का स्वरूप होता है। उससे भी कितने ही अधिक प्रकाशवान स्वरूप को गौर वर्ण समझना चाहिये। भारतीय शास्त्रो मे इस तत्त्व को ब्रह्मा नाम से कहा गया है। वह स्वरूप महारजोगुण (ब्रह्मा) की प्रथम अथवा बाल अवस्था का है।

महाचैतन्य प्रकृति से परे निर्गुण ब्रह्म है। वहाँ प्रकृति अपने गुण से केवल शक्ति-मात्र रहती है। वही ब्रह्म शक्ति को महाजागृत अवस्था मे धारण करने से महासत्त्वगुण अथवा विष्णु बनता है। शक्ति महाजागृत अवस्था में अपने गुण से युक्त हो जाती है। महासत्त्वगुण से प्रकृति को उस अवस्था मे विश्वमय चेतनता और विश्वमय ज्ञान प्राप्त होता है। सत्त्वगुण से प्रकृति का पोषित—तमोगुण के बढ़ने पर,

वही ब्रह्मरूप सत्त्वगुण महारजोगुण (ब्रह्मा) बन जाता है। उसको विश्व का मन कहना चाहिये।

५ महारचयित्री—महारजोगुण से महाजागृति मे विश्वमय चेतनता और विश्वमय ज्ञान के साथ विश्व को बनानेवाली क्रिया-शक्ति उत्पन्न होती है, अथवा रजोगुण मे उत्पादक क्रिया-शक्ति पैदा होती है।

महारजोगुण के स्वरूप मे जो तरुण अथवा युवा तमोगुण का योग होता है, वह रजोगुण की सत्ता से पोषित होकर फिर बढ़ता है। उसके बढ़ने से महारजोगुण भी प्रथम अवस्था से बढ़ते बढ़ते अनन्त काल मे तरुणावस्था मे प्रविष्ट होता है। उसकी पूर्ण तरुणावस्था मे विश्व को रचनेवाली क्रिया-शक्ति उत्पन्न होती है। उसी से विश्व का निर्माण होता है। उस क्रिया-शक्ति को विश्वरचयित्री अथवा विश्व की इच्छा-शक्ति कहना चाहिये। भारतीय शास्त्रों मे इस तत्त्व को विद्या-रूप प्रकृति अथवा सरस्वती नाम से कहा गया है। विश्वरचयित्री की वह प्रथम अवस्था है। उसकी प्रथम अवस्था का स्वरूप महारजोगुण की तरुणावस्था के स्वरूप से कुछ अधिक लाल गौर होता है। क्योंकि उसमें तमोगुण कुछ अधिक बढ़ने से गौर वर्ण में कुछ लालिमा आ जाती है।

विश्वरचयित्री पोषित तमोगुण के कारण प्रथम अवस्था से बढ़ते बढ़ते अनन्त काल मे तरुणावस्था में प्रविष्ट होती है। प्रकृति की उस अवस्था में, ब्रह्माण्ड, पिण्ड, अण्डों को स्थित

करनेवाले चौदह प्रकार के आकार उत्पन्न होते है। उनमें भिन्न-भिन्न १४ प्रकार की प्रकाश और अन्धकारकलायें होती हैं। प्रकृति चैतन्य आधार मे आधेय होकर विश्व की उत्पत्ति और विनाश मे उन्हीं १४ प्रकार के प्रकाश और अन्धकार-कलाओ मे परिवर्तित होती रहती है। उन्हीं को भारतीय शास्त्रो मे लोक कहते है।

चन्द्रमा के शुक्ल और कृष्ण दो पक्षो की तरह प्रकृति के भी शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते हैं। उसके शुक्ल पक्ष में सत्त्वगुण के प्रकाश से विश्व की उत्पत्ति होती है। और कृष्ण पक्ष में तमोगुण के अन्धकार से विश्व का विनाश होता है। इनका कार्य दिन और रात की तरह समझना चाहिये। जैसे दिन के प्रकाश से प्राणीमात्र चेतन होकर स्वकार्यों मे प्रवृत्त होते हैं और रात्रि के अन्धकार से प्राणीमात्र निद्रा मे लय होते है।

प्रकृति की १४ प्रकार की जो कलाये विश्व को पैदा कर फिर विनाश करती हैं, उन्हीं को १४ लोक कहते हैं। उनका आकार १४ तिथियों के चन्द्रविम्ब की तरह होता है। जैसे प्रकाश और अन्धकार की १४ कलाओं की न्यूनाधिकता से एक ही चन्द्रविम्ब प्रतिपदा से चतुर्दशी तक १४ तिथियों में १४ प्रकार का होता है। और उन्हीं १४ तिथियों के शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते हैं। ठीक उसी तरह चैतन्य के प्रकाश और प्रकृति के अन्धकार की १४ प्रकार की कलाओं से महासत्त्वगुण"

पक्ष में विश्वविराट् पैदा होता है और महातमोगुण-पक्ष में उसका नाश होता है।

महाप्रकृति के १४ लोकों के स्वरूप का अनुभव १४ तिथियों के चन्द्रविम्बों पर हो सकता है। लेकिन लोकों से विश्व की उत्पत्ति कैसे होती है? उसे भी सुनिये? १४ तिथियों की तरह अथवा महाप्रकृति के १४ लोकों की तरह स्त्रियों की योनियों में भी १४ लोक होते हैं। स्त्रियों का रज उन्हीं योनि १४ लोकों में शुक्ल और कृष्ण अथवा उत्पादक और विनाशक चक्र में घूमता रहता है।

रज का स्वभाव प्रकृति की तरह तमोगुणी होता है। वह स्त्रियों के ऋतुकाल मे तमोगुण के कारण अमावास्या के चन्द्रविम्ब की तरह नष्ट हो जाता है। अथवा रज योनि से पतित होता है। उसके पश्चात् शुक्ल पक्ष के चन्द्रविम्बों में प्रकाश-कलाओ की तरह प्रतिदिन योनि-लोक में उत्पादन क्रिया की एक-एक शुक्ल कला बढ़ती रहती है।

उन्हीं दिनों शुक्र की चैतन्य सत्ता से, रज तमोगुणी होने पर भी चेतन और पोपित होकर गर्भ में बच्चा बनता है। ठीक गर्भ में बच्चे की तरह महाप्रकृति की १४ कलाये चैतन्य की सत्ता से चेतन और पोपित होकर विश्व को पैदा करती है।

महाजागृति महाचैतन्य की सत्ता से पोपित और चेतन होकर पोपित तमोगुण मे बढ़ती है। उससे विश्व की समस्त

रचना होती है। तमोगुण के कारण महाजागृति परिवर्तनशील होती है। इसी से विश्व का परिवर्तन होता रहता है। महाजागृति के उस परिवर्तन को काल अथवा समय कहते हैं। उससे विश्व अथवा प्राकृतिक सृष्टि, जागृत, लुप्त, जीवन-मरण, बढ़ना-घटना आदि अनेक भेदो मे परिवर्तित होती रहती है। उस परिवर्तन से विश्व की अवस्थाये बनती है। जिससे महाजागृति एक अवस्था मे बढ़कर विश्व की उत्पत्ति करती है और दूसरी अवस्था मे घटकर उसका विनाश करती है।

६ काल—काल अथवा समय उसे कहते हैं, जिससे प्राकृतिक सृष्टि आवागमन-चक्र में घूम रही है। काल का कार्य परिवर्तन है। काल अपने परिवर्तन कार्य से प्रकृति को मुख्य तीन भेदों मे परिवर्तित करता रहता है। उसी से प्रकृति सत्त्वगुण मे पोषित होकर बढ़ती है, रजोगुण में रचयित्री बनकर विश्व का सृजन करती है और तमोगुण में काली बनकर विश्व का विनाश करती है। काल से प्रकृति व प्राकृतिक संसार की ये तीन मुख्य अवस्थाये बनती है:—

१. सत्त्वगुण—बाल अवस्था, जिसमें प्रकृति बढ़ती है। २. रजोगुण—तरुणावस्था, जिसमे पुरुष और प्रकृति के योग से विश्व की अनेकता उत्पन्न होती है। ३. तमोगुण—वृद्धावस्था, जिसमे अन्धकार बढ़ता रहता है।

काल से ही प्राणीमात्र की भी ये तीन अवस्थाये होती है—बाल, तरुण और वृद्ध। बाल अवस्था में प्राणीमात्र सत्त्वगुण

से बढ़ते है। तरुणावस्था में रजोगुण से (पुरुष स्त्री के योग से) अनेक बच्चे उत्पन्न होते है। और वृद्धावस्था में तमोगुण के कारण आँखों में अन्धकार आने से दृष्टि न्यून हो जाती है, त्वचा ढल जाती है, कान बहरे हो जाते है, वाणी ढीली पड़ जाती है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

७. महाअवधि—काल के स्वरूप में कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से अवधि उत्पन्न होती है। प्रकृति जितने काल तक एक गुण को बर्तती हुई बढ़ती है अथवा प्रकृति जितने समय तक एक गुण-सम्बन्धी कार्य करती है, उसको अवधि अथवा अवस्था कहते हैं। निश्चित व नियत उसका गुण है। यदि अवधि न होती तो काल के परिवर्तन से कोई भी वस्तु निश्चित प्रतीत न हो सकती। अवधि से ही काल के परिवर्तन का वेग धीरे धीरे घूमता है, जिससे प्राकृतिक संसार की स्थिति निश्चित प्रतीत होती है। प्राकृतिक संसार की बाल, तरुण, वृद्ध अथवा प्रथम, मध्यम और अन्त अवस्था अवधि से ही प्रतीत होती हैं। अवधि ही से प्रकृति की जाग्रत्, रचयित्री और काली तीन अवस्थायें बनती हैं।

८ महाकर्म—अवधि मे कुछ अधिक तमोगुण के बढ़ने से अनन्त काल पश्चात् महाकर्म उत्पन्न होता है। उसका कार्य प्रबन्ध है। कर्म से बन्धन-शक्ति पैदा होती है। कर्मबन्धन ही से विश्व के ब्रह्माण्ड, पिण्ड, अण्ड, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि अपने अपने कार्यों मे निर्धारित हैं। उसी से विश्व

के कार्यों का ठीक-ठीक प्रबन्ध हो रहा है। महाकर्म को भारतीय शास्त्रों मे इन्द्र कहते है।

९. महाआकाश महाकर्म के अनन्त काल पश्चात् उसके पोषित तमोगुण के कुछ अधिक बढ़ने पर प्रबन्ध का आकार उत्पन्न होता है। भारतीय शास्त्रो मे इस तत्त्व को महाकाश कहते हैं। उसके बनते ही उसमे शब्द पैदा हो जाता है। शब्द उसे कहते है—जिससे प्राणीमात्र मे ध्वनि व वाणी और मेघो मे गर्जना होती है। इसलिये आकाश मे शब्द-गुण होता है। महाकाश ही मे विश्व धारित और विस्तरित होता है।

१० महावायु—महाकाश मे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से अनन्त काल पश्चात् उसमे सञ्चालन शक्ति पैदा होती है। भारतीय शास्त्रो ने इस तत्त्व को वायु कहते हैं। वायु अपनी सञ्चालन अथवा बहने की शक्ति से विश्व के अन्तर्गत सबको स्पर्श करता है। इसलिये वायु मे स्पर्श गुण आता है। विश्व मे आदान प्रदान क्रियाये वायु से ही होती है।

११ महाअग्नि—महावायुके अनन्त काल पश्चात् उसमे पोषित तमोगुण कुछ अधिक बढ़ने से तेज उत्पन्न होता है। वायु मे अधिक पोषित तमोगुण के कारण जब प्रबल धावन शक्ति पैदा होती है, तब उसकी तरंगो के परस्पर संघर्षण से वायु मे तेज उत्पन्न हो जाता है। फिर वायु के कारण तेज के अणु परस्पर एकत्रित होने से तेज मे प्रकाश होता

है। उसको रूप भी कहते है। इसलिये वायु से तेज उत्पन्न होता है, और तेज मे रूप बन जाता है। उस तत्त्व को भारतीय शास्त्रों मे महाअग्नि कहते है। अग्नि मे रूप-गुण आता है।

१२. महाजल—महाअग्नि के अनन्त काल पश्चात् उसमे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से अथवा तेज में कुछ शीतलता आने से भाप उत्पन्न होती है। भाप के कणों के परस्पर मिलने से रस उत्पन्न होता है। उस तत्त्व को भारतीय शास्त्रों मे महाजल कहते है। अथवा तेज से भाप उत्पन्न होती है, और भाप में नमी आने से जल बन जाता है। भाप, मेघ, समुद्र, नदियाँ ये सब जल ही के विभाग हैं। जल में रस-गुण आता है। विश्व में समस्त रस जल से ही पैदा होते है।

१३. पृथ्वी—उस तेजित महाजल के अनन्त काल पश्चात् उसमे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने पर उसमें कुछ शीतलता आ जाती है। जिससे जल कुछ गाढ़ा बनने लगता है। और गाढ़ा बनते-बनते कुछ काल पश्चात् वह हिम की तरह जम जाता है। हिम को अधिक समय तक गाढ़ापन प्राप्त होने से, उसमें कीचड़ की तरह मृत्तिका शक्ति पैदा होती है। मृत्तिका के अणुओं के परस्पर मिलने से हिम की तरह चमकीला कीचड़ बन जाता है। कीचड़ के पैदा होते ही उसमे गन्ध उत्पन्न होती है।

वह हिम के समान चमकीले कीचड़ अनन्त काल

पश्चात सूख जाने पर सफेद-सूखी मृत्तिका और चमकीले चट्टान बन जाते हैं। फिर अनन्त काल पश्चात् सफेद मिट्टी का भी रूपान्तर होकर भूरी मिट्टी बन जाती है। भारतीय शास्त्रों में उस तत्त्व को पृथ्वी कहते हैं। इस तरह पृथ्वी में स्थूलपन और गन्ध-गुण आता है। समस्त गन्धें पृथ्वी-तत्त्व से पैदा होती हैं। विश्व की उत्पत्ति मे पृथ्वी १३ वाँ तत्त्व है।

विश्व की उत्पत्ति में पृथ्वी-तत्त्व बनने तक महाप्रकृति का पोषित तमोगुण बना रहता है। उसके उपरान्त वह धीरे-धीरे परिवर्तित होते हुए अनन्त काल मे उग्र तमोगुण बनकर विश्व का नाश करनेवाला चौदहवाँ तत्त्व बन जाता है। तत्त्व उसे कहते है, जिसमे अपना निश्चित गुण और शक्तियाँ होती हैं। तेरह तत्त्व जिनसे विश्व का विकास होता है। संक्षेप मे उनके नाम इस प्रकार हैं.—१. महाचैतन्य, २ महाजागृति, ३ महासत्त्वगुण, ४ महारजोगुण, ५. महारचयित्री, ६ काल, ७. महाअवधि, ८. महाकर्म, ९. महाआकाश, १० महावायु, ११ महाअग्नि, १२ महाजल, १३. पृथ्वी।

जहाँ तत्त्वों के साथ महाशब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ उनके सब प्रकार के विभागों का एक साथ उच्चारण किया गया है।

प्रत्येक तत्त्व के अपने-अपने गुण और शक्तियाँ इस प्रकार

है—१. महाचैतन्य में पूर्ण गुण और सत्य शक्ति है, जिससे जड़ और असत् प्रकृति भी चेतन और सत्य प्रतीत होकर विश्व की उत्पत्ति करती है। २. जागृति में बोध-गुण और विवेचन शक्ति है। ३. सत्त्वगुण में चेतन गुण और चित्त-शक्ति है। ४. रजोगुण में सृजन गुण और निर्माण शक्ति है। ५. रचयित्री में विदित गुण और रचना-शक्ति है। ६. काल में परिवर्तन-गुण और चञ्चल शक्ति है। ७. अवधि में स्थित गुण और निश्चित शक्ति है। ८. कर्म मे बन्धन गुण और प्रबन्ध शक्ति है। ६. आकाश में शब्द गुण और धारण शक्ति है। १० वायु में स्पर्श गुण और धावन शक्ति है। ११. अग्नि में रूप गुण और तेज शक्ति है। १२. जल मे रस गुण और द्रवित शक्ति है।१३. पृथ्वी मे गन्ध गुण और मृत्तिका (स्थूल) शक्ति है।

चौदहवाँ तत्त्व जो महातमोगुण अथवा उग्रतमोगुण है। उसमे अन्धकार गुण और नाशनी शक्ति है। उसी से समस्त विश्व के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों का नाश होता है। वह समस्त विश्व के नाश करने के पश्चात्, विश्व के आकार पर घोर अन्धकार रूप से रहता है। उसके पश्चात् अन्धकार भी अपनी विनाश-क्रिया से विनशित होकर घटते-घटते अनन्त काल मे केवल अति सूक्ष्म रूप से गुण-मात्र रह जाता है। उसकी विनाशी शक्ति का नाम भारतीय शास्त्रों में महाकाली है।

महाकाली को धारण करनेवाले और महाअन्धकार को समानेवाले महाचैतन्य के स्वरूप को भारतीय शास्त्रों मे महेश कहते हैं। वह अपनी अविनाशी सत्ता से उग्रतमोगुण के विनाश से शक्ति को रक्षित करता है। उस शक्तिवान् चैतन्य को महेश कहते हैं। फिर विश्व की उत्पत्ति के आरम्भ मे वही शक्ति शिव की सत्ता से सत्त्वगुणी जागृति बनकर विश्व का सृजन करती है। विश्व की उत्पत्ति और विनाश मे प्रत्येक तत्त्व, गुण और शक्तियो के योग से प्रत्येक के सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते हैं। जैसे १. महाचैतन्य के त्रिगुण भेद विष्णु, ब्रह्मा और महेश हैं। २. महाजागृति (प्रकृति) के त्रिगुण भेद—जागृति, सृजनशक्ति और काली है। ३. सत्त्व-गुण के त्रिगुण भेद—उज्ज्वलता, चेतन और ज्ञान है। ४. रजोगुण के त्रिगुण भेद—समाधान, संकल्प और विकल्प है। ५ रचयित्री के त्रिगुण भेद—कला, क्रिया और विकास है। ६ काल के त्रिगुण भेद—वर्तमान, भविष्य और भूत है। ७. अवधि के त्रिगुण भेद—बाल, तरुण और वृद्ध हैं। ८. कर्म के त्रिगुण भेद—सुख, शासन और दुःख हैं। ९ आकाश के त्रिगुण भेद—धारण, शब्द और विस्तार हैं। १० वायु के त्रिगुण भेद—स्पर्श, धावन और शोषण हैं। ११. अग्नि के त्रिगुण भेद—प्रकाश, तेज और दाहक हैं। १२. जल के त्रिगुण भेद—रस, द्रवित और भाप हैं। १३ पृथ्वी के त्रिगुण भेद—गन्ध, मृत्तिका और छाया हैं।

१४. उग्रतमोगुण के त्रिगुण भेद नाश, अन्धकार और पतन है।

पृथ्वी-तत्त्व उत्पन्न होने पर विश्व के समस्त स्थूल पिण्ड उत्पन्न हो जाते है। पृथ्वी फिर पोषित तमोगुण में बढ़ने के कारण अवस्था मे प्रवृत होती है। उसकी बाल्यावस्था को सत्ययुग, तरुणावस्था को त्रेतायुग, अधेड़ अवस्था को द्वापरयुग और वृद्धावस्था को कलियुग कहते है।

जिस तरह चैतन्य नित्य एक होने पर भी विकारमय प्रकृति के संयोग से उसके तीन भेद होते है। जिनको विष्णु, ब्रह्मा, महेश कहते हैं, और वे तीनो क्रमशः सत्त्व, रज, तम गुणों को धारण करने से अवस्था मे प्रवृत्त होकर अपनी अवधि तक बढ़ते है। प्रकृति की सत्त्व, रज और तम तीन अवस्थाओं से आवृत होने पर भी वे तीनो चैतन्य के रूप होने से प्राकृतिक अवस्था मे भी पुल्लिङ्ग होते है। प्रकृति के सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद तीन महात्माओ अर्थात् महाविष्णु, महाब्रह्मा और महा-महेश मे आश्रित होने से एक ही क्रिया रूप महाप्रकृति तीन महावस्थाओं मे अथवा जाग्रत, सृजन और लुप्तावस्था मे प्रवृत्त होती है। महाप्रकृति की उन तीन अवस्थाओं को महा-लक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली कहते है। तीनों प्रकृति-रूपा होने से स्त्रीलिंग है।

इसी तरह पुरुष प्रकृति के सम्मिश्रण सत्त्व, रज, तम तीन-तीन भेदों से परमात्मा के स्वरूप आत्मा मे विश्व के अन्तर्गत स्थूल

शरीरों में सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी अनेक पुरुष स्त्री भेद पैदा होते है।

परमात्मा और आत्मा में कोई भेद नहीं, वे एक है। महा-जागृति और शरीर जागृति के विकार से उनमें भेद मालूम होता है। जिस तरह परमात्मा के सत्त्वगुण से विश्व की बोधित महाजागृति का सञ्चार होता है, उसी तरह जीवात्मा के सत्त्वगुण से शरीर बोधित शरीर-जागृति का सञ्चार उत्पन्न होता है, उसको बुद्धि कहते है।

आत्मा चैतन्य है, क्योंकि वह महाचैतन्य परमात्मा का अंश है। वह नित्य, एक और एक अवस्था में रहता है। किंतु बुद्धि के महाप्रकृति की तरह सत्त्व, रज और तम तीन भेद होते हैं।

बुद्धि के मुख्य सत्त्व और तम दो ही भेद होते हैं, क्योंकि रज सत्त्व और तम के योग से विश्व और शरीर रचने का कारण बनता है। इसलिये शरीर बोधित रजोगुणी बुद्धियो मे सत्त्व और तम की न्यूनाधिकता से जीवात्मा मे बुद्धि के प्रधान दो ही भेद होते है। अर्थात् सत्त्वगुणी शुक्ल बुद्धि और तमो-गुणी काली बुद्धि।

इन दोनो प्रकार की बुद्धियों मे प्रत्येक के मुख्यत सात सात भेद होते हैं। चौदह प्रकार के बुद्धि-भेदों के विस्तार मे जीवात्मा शरीरों को उत्पन्न करने का कारण बनता है।

चौदह बुद्धियों मे से सात तरह की बुद्धियां मे प्रकाश

कलाओं की क्रमश. अधिकता और अन्धकार की न्यूनता होती है और सात प्रकार की बुद्धियों में क्रमशः अन्धकार की अधिकता और प्रकाशकलाओं की न्यूनता होती है ।

इनका ठीक-ठीक उदाहरण विश्व के चौदह लोकों अर्थात चन्द्रमा की १४ तिथियों के चन्द्रविम्ब मे घटता है। जैसे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा मे अष्टमी से चतुर्दशी तक प्रत्येक तिथि के चन्द्रविम्ब मे प्रकाशकलाये क्रमशः अधिक और अन्धकार न्यून होता है।

वैसे ही सात प्रकार की रजोगुणी बुद्धियों के योग मे क्रमशः प्रकाश-कलाओं की अधिकता और तमोगुण की न्यूनता होती है। उन प्रकाशमय सात प्रकार की शुक्ल बुद्धियों को दैविक अथवा सत्त्वगुणी बुद्धियाँ कहते है।

फिर जैसे शुक्ल पक्ष की सप्तमी से प्रतिपदा तक चन्द्रविम्ब मे प्रकाशकलाओं की क्रमशः न्यूनता और अन्धकार की अधिकता होती है । वैसे ही सात प्रकार की रजोगुणी बुद्धियों के योग में प्रकाशकलाओं की क्रमशः न्यूनता और अन्धकार की अधिकता होती है । उन सात प्रकार की अन्धकारमय काली बुद्धियों को आसुरिक अथवा तमोगुणी बुद्धियाँ कहते है ।

अथवा पूर्णमासी और अमावास्या को छोड़कर जिस तरह प्रत्येक पक्ष की चौदह तिथियों के चन्द्रविम्व पर प्रकाश और अन्धकार का योग होता है, उसी तरह चौदह बुद्धियों में

प्रकाश-कलाओं और अन्धकार का भेद होता है। वे सब सत्त्व और तम के योग से रजोगुणी होती हैं।

अथवा जिस तरह विश्व की उत्पत्ति मे महाचैतन्य के सत्त्व-गुण और महाप्रकृति के तमोगुण की आधिक्य और न्यूनता से १४ लोक भेद होते हैं, उसी तरह परमात्मा के स्वरूप आत्मा मे प्राणियों की भिन्न-भिन्न चौदह प्रकार की रजोगुणी बुद्धियों अथवा शरीर जागृतियों का भेद होता है।

विश्व के चौदह लोकों की बोधित महाजागृतियों मे और शरीर बोधित शरीर-जागृतियाँ चौदह प्रकार के बुद्धि-भेदों में सिर्फ आधिक्य-न्यूनता का अन्तर होता है। रजोगुण का सम्बन्ध उनमे समान रहता है।

सब प्रकार की बुद्धियाँ प्रकृतिरूपा होने से चञ्चल और परिवर्तनशील होती हैं। इसलिये सतसंग से वे प्रकाशित होती हैं, और तम-संग से तामसी अथवा काली होती हैं।

सात प्रकार की जो दैविक बुद्धियाँ होती हैं, उनमें भिन्न-भिन्न सात प्रकार के सत्त्वगुणी-प्रकाश होते हैं। बुद्धियों के उन प्रकाशों को ज्ञान कहते हैं। उनके नाम सत्य, तप, जन, महा, स्व., भुव, भू हैं। इन्हीं ज्ञानों की प्रकाशकलाओं से बुद्धियाँ प्रकाशित होकर सत्य-असत्य आदि विश्व के समस्त पदार्थों के रहस्यों को समझने मे समर्थ होती है। प्रत्येक ज्ञानों में विश्व के रहस्यों को समझने की अलग-अलग योग्यता होती है।

इसलिये भारतीय सभ्यता में दिन रात की सन्धियों में, जिनमें प्रकाश और अन्धकार का संघर्ष होता है। 'सन्ध्या' में प्रथम ॐ भू, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जन, ॐ तप, ॐ सत्य कहते हैं। इस प्रकार इन सात प्रकार की ज्ञान-कलाओं का ध्यान कर उनको क्रमशः बुद्धि मे धारण करते हैं, जिससे बुद्धि प्रकाशित होकर महाचैतन्य के प्रकाश में विश्व के रहस्यों को यथार्थ समझ सके। जैसे आँखों का प्रकाश सूर्य के प्रकाश में समस्त रूपों का दृश्य समझ सकता है।

यदि आँखों मे प्रकाश न हो अर्थात् अन्धी आँखें हों, तो उन्हे सूर्य के प्रकाश करने पर भी रूपों का दृश्य मालूम नहीं हो सकता, और न सम-विषम-भूमि, नदी, पहाड़ आदि का ज्ञान हो सकता है। इसी तरह यदि बुद्धि में प्रकाश न हो, तो महाचैतन्य के नित्य-पूर्ण प्रकाश होने पर भी बुद्धि को विश्व के यथार्थ रहस्यों का ज्ञान नहीं हो सकता। जिससे प्राणी प्राकृतिक संसार के अनेक दुःख और क्लेशों में फँस जाते है।

इसलिये बुद्धि को प्रकाशित करने के लिये भारतीय सभ्यता में ॐ भू, ॐ भुव, ॐ स्वः, ॐ मह, ॐ जन, ॐ तप, और ॐ सत्य इन सात प्रकार के ज्ञानों का स्मरण कर उन्हें बुद्धि में धारण करते हैं।

जिससे प्रकाशित बुद्धि को महाचैतन्य के प्रकाश में सुख दुःख आदि विश्व के समस्त रहस्यों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके।

सुख दुःख प्राणीमात्र के जीवन का मुख्य लक्ष्य हैं। जिससे वे सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति का सदैव प्रयत्न करते रहते है।

हम देखते है, दिन मे प्रकाश के कारण सर्वत्र घूमने-फिरने में स्वतः ही निर्भयता होती है।

और जो जैसा है, वह वैसे ही प्रतीत होता है। किंतु रात्रि के घोर अन्धकार में बस्ती से बाहर जाने मे स्वतः ही भय होता है, और किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान भी नही हो सकता।

इसलिये प्रकाश मे निर्भयता है, और उसका स्वरूप सुख है। और, अन्धकार मे भय है, और उसका स्वरूप दुःख है।

प्राणियों को इन दोनो के रहस्य बुद्धि के ज्ञान ही से मालूम होते हैं। सुख की प्राप्ति तक प्राणीमात्र सदैव प्रयत्नशील बने रहते है, किन्तु अज्ञानवश वे दुःख मे फँसते रहते हैं।

बुद्धि की चेतन-सत्ता का नाम ॐ है। इसलिये भू, भुव आदि ज्ञानों के नामों के साथ प्रथम ॐ लगाया जाता है।

विश्व के सत्त्वगुणी सप्त लोकों के भी ये ही नाम है। लोक यानी प्रकाश करनेवाले। इसलिये विश्व को प्रकाशित करनेवाले सप्तलोकों के और बुद्धियों को प्रकाशित करनेवाले सप्त ज्ञानों के नाम भू, भुव, स्वः, मह, जन, तप, सत्य है।

मानसिक बुद्धि अधिकतर भू लोक मे रहती है। इसलिये संध्या मे प्रथम भू-ज्ञान ही से स्मरण किया जाता है।

चन्द्रबिम्ब को पूर्ण प्रकाशित करनेवाली पूर्णिमा की तरह बुद्धि को पूर्ण प्रकाशित करनेवाले ज्ञान का नाम सत्य है। इसलिये भारतीय सभ्यता मे संध्या मे प्रथम बुद्धि को प्रकाशित करने के लिये ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् कहा जाता है, और फिर उन प्रकाशित बुद्धियों से महाचैतन्य के प्रकाश का ध्यान करने के लिये 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्' कहते है।

सात प्रकार की जो आसुरिक बुद्धियाँ होती, है उनमे अन्धकार अधिक और प्रकाश-कलाये न्यून होती है। बुद्धियों के उन अन्धकारों को अज्ञान कहते है। वे भी आसुरिक बुद्धियों के साथ विभिन्न सात प्रकार के होते हैं। उनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल है। विश्व के तमोगुणी सप्त लोकों के भी यही नाम है।

बुद्धि के रजोगुण मे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से मन उत्पन्न होता है। बुद्धि के १४ भेद होने से मन के भी चौदह भेद होते हैं। वे अपनी बुद्धि के अनुसार रजोगुण धारण करते हैं। मनके उस रजोगुण को स्वभाव कहते है।

मन रजोगुणी होता है। उसकी बुद्धि (प्रकृति) के रजोगुण मे जैसे सत और तम की न्यूनाधिकता का सम्बन्ध होता है,

वैसे ही मन का स्वभाव बनता है। स्वभाव भी चौदह प्रकार के होते है। उनमे से सात प्रकार के दैविक और सात प्रकार के आसुरिक होते है। मन का स्वभाव बुद्धि के ज्ञान-अज्ञान पर निर्भर होता है।

मन के रजोगुण से सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की रचना होती है। मन शरीर का ब्रह्मा है। जिस तरह विश्व की रचना का कारण महारजोगुण ब्रह्मा है, उसी तरह शरीर रचने का कारण मन होता है। महाब्रह्मा और शरीर-ब्रह्मा मन मे सिर्फ न्यूनाधिकता का अन्तर होता है। रजोगुण के सम्बन्ध से उनमे कुछ भी अन्तर नहीं होता।

महाब्रह्मा के अन्तर्गत चौदह लोको के रचयिता चौदह लोक-ब्रह्मा होते हैं, अथवा चौदह प्रकार के विभिन्न रजोगुण-मन होते हैं। उनको मनु भी कहते है। उनकी रचना तक महा-रजोगुण ब्रह्मा की अवस्था होती है।

जिस तरह विश्व के अन्तर्गत चौदह लोको के रच-यिता विभिन्न चौदह प्रकार के मन होते है, उसी तरह प्राणियों के शरीर-रचयिता मन भी मुख्यत. १४ प्रकार के होते हैं।

मन के रजोगुण मे कुछ तमोगुण के बढ़ने से इच्छा उत्पन्न होती है। महारजोगुण से उत्पन्न होनेवाली विश्व की रचयित्री को सरस्वती व विश्व-सृजन-शक्ति कहते हैं। और, मन से उत्पन्न होनेवाली शरीर-रचयित्री को इच्छा कहते हैं। मन से

इच्छा उत्पन्न होती है। उसके रजोगुण में मन के रजोगुण से कुछ अधिक पोषित तमोगुण होता है।

इच्छा के सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीन भेद होते है। इच्छा के रजोगुण मे कुछ पोषित तमोगुण के बढ़ने से शारीरिक काल उत्पन्न होता है। उसके रजोगुण मे इच्छा के रजोगुण से अधिक तमोगुण होता है। वह परिवर्तनशील होता है। उसके तीन भेद होते हैं। विश्व के अन्तर्गत उसके तीन महा भेदों के नाम—जाग्रत्-काल, रचना-काल और विनाशकाल है।

विनाश-काल छिपा हुआ अथवा बीता हुआ काल, जिसे भूतकाल भी कहते है। रजोगुण के क्रिया-काल को वर्तमान काल कहते है। और जाग्रत् होनेवाले काल को भविष्य काल कहते है।

इसी तरह सूक्ष्म भूतों के साथ भी उसके उत्पन्न-काल, क्रिया-काल और लोप-काल तीन भेद होते है।

शरीर के अन्तर्गत भी काल के बाल, तरुण और वृद्ध मुख्य तीन भेद होते है। प्रत्येक अवस्थाओं का परिवर्तन काल से होता रहता है।

काल के रजोगुण मं जो पोषित तमोगुण होता है। वह अपने स्वभाव में बढ़ता है। उससे अवधि उत्पन्न होती है। काल के रजोगुण से अवधि के रजोगुण मे पोपित तमोगुण अधिक होता है। समस्त विश्व और प्राणि-मात्र की अवस्थायें

उसी से बनती हैं। उसके सतोगुण से विश्व की जाग्रत् अवस्था और प्राणियों की बाल अवस्था होती है। रजोगुण से विश्व की रचना और प्राणियों की तरुणावस्था होती है। तमोगुण से विश्व की और प्राणियों की वृद्धावस्था होती है। समस्त अण्ड, पिण्ड और ब्रह्माण्डों की अवस्थायें अवधि से बनती हैं और काल से वे चञ्चल होती हैं।

अवधि में कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से कर्म बनता है। अथवा इच्छा में काल और अवधि के होने पर कर्म बनता है। बिना काल और अवधि के केवल इच्छा ही से कर्म नहीं बनता, इसलिये अवधि के रजोगुण में कुछ अधिक तमोगुण के बढ़ने पर कर्म बनता है।

विश्व के अन्तर्गत महाकर्म के सत्त्वगुण से सुख का विस्तार, रजोगुण से क्रिया का विस्तार और तमोगुण से दुःख का विस्तार होता है।

उसी तरह शरीर के अन्तर्गत प्राणियों को सतोगुणी कर्म से सुख, रजोगुणी कर्म से क्रियाओं की उत्पत्ति और तमोगुणी कर्म से बन्धन और दुःख होता है।

विश्व में महातत्त्वों और पिण्डों का शासन व प्राणियों के शरीरों में शारीरिक तत्त्व और इन्द्रियों का बन्धन कर्म से होता है। उसका स्वरूप पुरुषमय है। इसलिये वह पुल्लिङ्ग है।

काल और कर्म के योग से अथवा कर्म के रजोगुण में कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से आकार बनता है। विश्व

के उस आकार को महाकाश और शरीर आकार को शरीर आकाश कहते है।

विश्व के अन्तर्गत महाकाश के सत्त्वगुण से धारण-शक्ति, जिससे पिण्ड अपने आप आकाश में धारित है, रजोगुण से आकर्षण-शक्तियाँ, जिनसे पिण्ड परस्पर आकर्षित है, और शब्द और तमोगुण से विस्तार उत्पन्न होता है।

इसी तरह शरीर आकाश के सतोगुण से प्राणियों मे स्मरण शक्ति, कानों में शब्द बोध शक्ति और शारीरिक नाड़ियों की धारणा शक्ति उत्पन्न होती हैं। रजोगुण से शब्द पैदा होता है। और तमोगुण से शरीर का फैलाव, मोह, शोक, अहङ्कार, उन्माद और विस्मृति पैदा होते है। शरीर बढ़ने के साथ मोह, शोक, अहङ्कार, उन्माद और विस्मृति भी बढ़ते है।

स्मरण-शक्ति के विस्तार को हृदय कहते है। उसका स्थान स्मरण-शक्ति से कान तक होता है। इसलिये शब्द का बोध कान से होता है, और वह टिकता स्मरण शक्ति मे है। स्मरण शक्ति को शब्द धारण शक्ति कह सकते है, क्योंकि वह महाकाशकी तरह शब्द को धारण करती है।

हृदय के स्मृति और विस्मृति दो भेद होते है। इसी तरह कानों के भी शब्द-बोध और शब्द-अबोध दो भेद होते है। जिन कानों मे शब्द को धारण करने की शक्ति होती है, उनसे शब्द का बोध होता है, और, वही शब्द को हृदय की स्मरण-शक्ति तक पहुँचा सकते हैं। दूसरे प्रकार के जो कान होते है, उनकी

शब्द-धारणा-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये उनसे शब्द का बोध नहीं हो सकता, और न वे शब्द को स्मरण-शक्ति तक पहुँचा सकते है। उन्हे बहरे कान कहते है।

शरीर आकाश-तत्त्व के सतोगुण से प्रथम शारीरिक नाड़ियों की धारणा-शक्ति बनती है। जो समस्त शरीर मे जाल की तरह फैलकर शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों को हृदय की स्मरण-शक्ति की ओर आकर्षित किए हुए रहती है, अर्थात् खींचे हुए रहती है। हृदय नाड़ियों का केंद्र स्थान है। वे हृदय से शरीर के प्रत्येक अवयवो मे फैली हुई होती है। शरीर मे बहुत-सी नाडियॉ इतनी सूक्ष्म है, जिनको देखना और जिनकी गति का ज्ञान करना बहुत कठिन है। नाडियो को शरीर की धारणा-शक्तियाँ कह सकते हैं। क्योंकि वही तमाम शरीर के अवयवों को धारण करती हैं, जिस तरह महाकाश महातत्त्व और पिण्डों को धारण करता है, उसी तरह नाडियॉ भी शारीरिक तत्त्वों और अङ्गो को धारण करती है।

नाडियो के बनते ही फिर शरीर आकाश-तत्त्व के रजोगुण मे शारीरिक शब्द उत्पन्न होता है। वह समस्त शरीर मे फैलता है। प्राणियो के शरीर मे उस के प्रधान सात भेद होते हैं। अर्थात कण्ठ मे वाणी-शब्द, पेट में ऑतों द्वारा होने का शब्द, गुदा मे पाद-शब्द, कान में कर्ण-शब्द, नासिका मे नासिका-शब्द, शरीर मे शरीर हिलने का शब्द, और शरीर टकराने मे अचानक शब्द।

इनके भी दो भेद होते है। सार्थक और निरर्थक। कण्ठ शब्द के सिवा अन्य छः प्रकार के जो शब्द शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों से होते है, वे सब निरर्थक होते है। कण्ठ-शब्द भी सार्थक और निरर्थक दो प्रकार के होते हैं।

कण्ठ-शब्द के शब्द-काल में वाणी की यथार्थ क्रिया से सार्थक, और यथार्थ क्रिया के विना निरर्थक शब्द होता है।

सार्थक शब्द के भी मुख्य सात भेद होते है। कण्ठ-शब्द के शब्द-काल मे वाणी जब अपनी सीमा के सात स्थानों मे क्रिया करती है, तब उनका ज्ञान होता है।

वाणी जिन सात स्थानों मे सार्थक शब्द के लिये क्रिया करती है उनको कण्ठ, तालू, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, जिह्वामूल और नासिका कहते है। इनमे भी शब्द के लिये वाणी-क्रिया के मुख्य पॉच स्थान है — कण्ठ, तालू, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ।

सार्थक शब्द के लिये इन स्थानों मे से प्रत्येक मे वाणी की क्रिया से सात सात प्रकार की ध्वनियॉ उत्पन्न होती है। जैसे कण्ठ मे पैदा होनेवाले वाणी की। क्रिया से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियो के सात भेद—क, ख, ग, घ, ङ, ह और : (विसर्ग) है।

तालू में उत्पन्न होनेवाली ध्वनियों के सात भेद – च, छ, ज, झ, ञ, य और श है।

मूर्धा में उत्पन्न होनेवाली ध्वनियों के सात भेद—ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष है।

दन्त से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियों के सात भेद—त, थ, द, ध, न, ल और स हैं।

ओष्ठ से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियों के सात भेद—प, फ, ब, भ, म, व और उपध्मानीय हैं। प़, फ़ के नीचे जो चिह्न होते हैं, उनको उपध्मानीय कहते हैं।

ध्वनियों के इन भेदों को व्यञ्जन कहते हैं। इनमें भी प्रत्येक बारह प्रकार से उच्चारित किए जाते हैं। जैसे क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः अथवा अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः कहते हैं। इनको स्वर कहते हैं।

इनके अतिरिक्त ऋ, ॠ, लृ और ॡ चार स्वर ऐसे हैं, जिनका केवल अपना उच्चारण हो सकता है, लेकिन अन्य बारह स्वरों की तरह प्रत्येक व्यञ्जन के साथ उनका उच्चारण नहीं हो सकता।

वाणी के दो स्थान, जो जिह्वामूल और नासिका हैं। उनमें जिह्वामूल से गुफा सम्बन्धी ध्वनियों और नासिका से पञ्चम-वर्ग सम्बन्धी ध्वनियों का बोध होता है। जैसे ॲ, ङ, ञ, ण, न, म। इन ध्वनियों का उच्चारण नासिका-स्थान से होता है।

सब व्यञ्जनों और स्वरों के योग से सार्थक शब्द की सीमा बनती है। प्राणी-मात्र के कण्ठ से शब्द पैदा होते हैं, और, सब शब्दों का स्वरूप एक ही तरह का होता है। किंतु शब्दों

की सार्थकता से प्राणी-मात्र की वाणियों की क्रिया से भेद होता है। इसी तरह समस्त मनुष्यों के कण्ठ मे शब्द एक ही तरह का है, किंतु वाणी की क्रिया से उनमे भाषान्तर होता है। मनुष्य-मात्र एक जाति होने पर भी, उनकी सार्थक वाणी में विभिन्नता आने से, अनेक भाषाये पैदा होती है। जैसे रानी, क्वीन और बेगम तीनो मे शब्द एक ही तरह का होता है, किन्तु शब्द के साथ भिन्न-भिन्न स्थानों मे वाणी क्रिया करती है, इसलिये तीनो में भाषान्तर होता है।

रानी शब्द मे वाणी मूर्धा और दन्त से क्रिया करती है। क्वीन शब्द में कण्ठ, ओष्ठ, दन्त और बेगम शब्द मे ओष्ठ, कण्ठ, ओष्ठ से।

कण्ठ से शब्द एक ही होने पर भी वाणी क्रिया में विभिन्नता आने से मनुष्य-समुदाय की भाषा मे अनेक भाषान्तर हो गये।

विभिन्न भाषाओं के भिन्न-भिन्न भाषा-कोष बनाए गये, और, उनको सुगमता से निर्माण करने के लिये अनेक विद्यायें निकाली गईं।

वाणी निराकार है। निराकार का अर्थ जिसमे लम्बाई, चौड़ाई और रूप नहीं होता। वाणी आकाश-तत्त्व से उत्पन्न होती है, इसलिये वाणी और आकाश तत्त्व मे रूप नही होता। वाणी निराकार से साकार बनाई गई। वाणी का साकार रूप लिपि है। साकार का अर्थ जिसमे लम्बाई, चौड़ाई और रूप उत्पन्न होता है, इसलिये लिपि में वाणी का रूप उत्पन्न हो जाता है।

रजोगुणी मनुष्यों को सर्वप्रथम उत्पन्न करनेवाले महा-रजोगुण को ब्रह्मा कहते हैं। उस महामनुष्य ब्रह्मा ने सर्व-प्रथम जिस लिपि मे वाणी को सार्थक बनाया, मनुष्यो के परम कल्याण करनेवाली, वह वेद की लिपि है। अर्थात् वह विद्या है, जिसमें वेद लिखे गए है। वेद उस रहस्य-कोष को कहते हैं, जिसके द्वारा मनुष्यों को सब कुछ विदित हुआ। अर्थात् ज्ञान हुआ।

वेद और उसको रचनेवाली विद्या मनुष्यो की सर्व-प्रथम सभ्यता है। संसार में वे दोनो मनुष्य-मात्र के है। वर्तमान किसी जाति विशेष व व्यक्ति विशेष के नहीं। क्योंकि मनुष्यों को सर्व कार्यों का ज्ञान वेद से ही विदित हुआ। वेद मनुष्यों को सर्वप्रथम उत्पन्न करनेवाले महापुरुष की वाणी है। मनुष्यो मे, जो अनेक मतमतान्तर व जातियाँ है, सब उसी पितामह की सन्तान है, और सब जातियाँ अथवा मनुष्य-मात्र परस्पर भाई है।

जिस तरह एक ही पुरुष की सन्तान के कबीलो मे एक या दो ही पुश्तों मे उनके रहन-सहन, आचार-विचार मे अन्तर आ जाता है। उसी तरह अनन्त काल से संसार में फैली हुई, समस्त मनुष्य जाति, एक ही महापुरुष ब्रह्मा की सन्तान होने पर भी उनके आचार-विचारों मे भिन्नता आने से अनेक मत-मतान्तर और जातियाँ पैदा हो गईं।

शब्द आकाश के रजोगुण से प्राणियों के कण्ठ मे पैदा होता

है। वाणी से सार्थक बनता है, और, वह उत्पन्न होते ही महाकाश मे फैलता है, महाकाश अपने सत्त्वगुण से उसके फैलाव को धारण करता है। शब्द आकाश में जितना अधिक फैलता है, उतने ही शीघ्र वह उसके तमोगुण से विच्छिन्न हो जाता है।

शब्द जब तक महाकाश के सत्त्वगुण में रहता है, तब तक सतोगुणी कानो को उसका बोध होता है, और जहाँ शब्द महाकाश में फैलने के कारण तमोगुण से विच्छिन्न हो जात है, वहाँ कानो को शब्द का ज्ञान नहीं हो सकता।

समस्त उत्पन्न होनेवाले शब्द महाकाश की धारण-शक्ति में या प्राणियों के हृदय में आधेय होकर रहते है।

शरीर आकाश तत्त्व के तमोगुण से प्राणियो के शरीर का विस्तार होता है। शरीर-विस्तार के साथ स्मरण-शक्ति भी विस्तृत होती है। जिससे उसमें तमोगुण बढ़ता रहता है। उस तमोगुण के दो भेद होते है।—प्रथम मोह, और दूसरी विस्मृति। ये स्मरण-शक्ति के तामस स्थान मे आधेय होकर रहते है। स्मरण-शक्ति के फैलाव से कुछ मोह पैदा होता है और अधिक फैलाव से विस्मृति होती है। मोह और विस्मृत से शोक उत्पन्न होता है। विस्मृति और शोक से उन्माद पैदा होता है। इसके दो भेद होते हैं—उन्माद और अहङ्कार।

कानों का तामसी अथवा बहरापन भी शरीर आकाशतत्त्व के तमोगुण से होता है। तमोगुण के कारण उनकी शब्द-धारणा-

शक्ति नष्ट हो जाती है, इसलिये उनसे शब्द का बोध नहीं हो सकता। तमोगुण के कारण उनमें पहुँचा हुआ शब्द हृदय की स्मरण-शक्ति तक नहीं पहुँच सकता। वह बीच ही में रुककर उन कानोंसे बाहर महाकाश की धारणा-शक्ति में समा जाता है।

शरीर आकाश तत्त्व के सत्त्वगुण से प्राणियों में स्मरण-शक्ति, कानों में शब्द धारणा-शक्ति और शारीरिक नाड़ियों की धारणा-शक्ति, रजोगुण से शब्द, वाणी और तमोगुण से शारीरिका विस्तार मोह, विस्मृति, शोक, उन्माद, अहङ्कार और कानों का बहरापन होता है।

शरीर आकाश अथवा शरीर आकार उत्पन्न होते ही उसके रजोगुण में कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से शारिरिक वायुतत्त्व उत्पन्न होता है। महावायु की तरह उसके भी सत रज, तम तीन भेद होते हैं।

शारीरिक वायुतत्त्व के सत्त्वगुण से शरीर की बनावट में प्रथम त्वचा के अवयव उत्पन्न होते हैं। फिर दिल बनता है और दिल से फिर प्राणवायु की क्रिया पैदा होती है।

रजोगुणी भेद से शारीरिक बल और हस्त-पाद-क्रिया पैदा होती है। तमोगुण से त्वचा का ढलना, हस्त-पाद क्रियाओं का ढीला पड़ना और चिन्ता, भय पैदा होते है।

दिल के उत्पन्न होते ही उसके तीन भेद होते हैं —ज्ञान-शक्ति, विचारशक्ति और क्रियाशक्ति।

ज्ञानशक्ति दिल से त्वचा तक, विचारशक्ति दिल से मस्तिष्क

तक और क्रिया-शक्ति दिल से प्राण की सीमा तक सम्बन्ध रखती है।

शरीर की बनावट में प्रथम वायुतत्त्व से त्वचा के अनन्त अवयव उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक अवयवों को एक-एक सूक्ष्म नाड़ियाँ धारण करती हैं। प्रत्येक नाड़ियाँ त्वचा के अवयवों से दिल में, वहाँ से मस्तिष्क के विचार स्थान में, और फिर वहाँ से हृदय की स्मरण-शक्ति में पहुँची हुई रहती है। स्मरण-शक्ति के समीप ही विचार-शक्ति होती है। जिस तरह शारीरिक आकाश तत्त्व से शरीर वायुतत्त्व उत्पन्न होता है, ठीक उसी तरह स्मरण शक्ति से विचार-शक्ति पैदा होती है।

दिल की ज्ञान-शक्ति दिल से त्वचा के प्रत्येक अवयवों में फैली हुई रहती है। प्रत्येक अवयवों की एक-एक सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं। जिनके द्वारा त्वचा के छूने, काटने और शीतोष्ण का ज्ञान दिल में पहुँचता है। शीतोष्ण और छूने, काटने का ज्ञान त्वचा के अवयवों से होता है। उन के परिणाम को दिल में नाड़ियाँ पहुँचाती हैं।

त्वचा के जो अवयव होते हैं। वे सब महावायुमंडल से वायु को शोषण करते हैं और उस वायु को अपनी नाड़ियों द्वारा समस्त शरीर में बहाते हैं। उसी से शरीर में रुधिर की गति बनती है। जिस तरह आकाश में वायु बहता रहता है उसी तरह वह शरीर में भी बहता रहता है।

नाड़ियाँ त्वचा के स्पर्श-ज्ञान को शरीर में बहनेवाले वायु

द्वारा ही दिल में, दिल से मस्तिष्क के विचार स्थान में और वहां से स्मरण-शक्ति में पहुंचाते हैं। नाड़ियों की गति भी शरीर में चलनेवाले वायु से ही बनती है।

स्पर्शज्ञान करनेवाले त्वचा के अवयव प्राणियों के शरीर में सर्वत्र फैले हुये रहते हैं। उन्हीं के द्वारा दिल को शीतोष्ण, छूने, काटने इत्यादि विभिन्न तरह के स्पर्शों का ज्ञान होता है। त्वचा के अवयवों को केवल स्पर्शज्ञान होता है। स्पर्श के परिणाम का ज्ञान दिल के द्वारा विचार और स्मरण शक्तियों को होता है। दिल की विचार-शक्ति शारीरिक तत्त्वों और महातत्त्वों के स्पर्श-ज्ञान का विचार करती और परिणाम को स्मरणशक्ति में पहुँचाती है।

शरीर के अवयवों द्वारा ग्रहण किये हुये वायु की गति से गर्भ में प्राणियों के दिल की क्रिया-शक्ति उत्पन्न होती है। वह महावायुमण्डल से वायु को खींच कर शरीर में प्राण का सञ्चालन करती है। शरीर में सञ्चालन करने वाले समस्त वायु के मुख्य पाँच भेद होते हैं—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान।

प्राणादि पांचों वायु वास्तविक दिल की एक ही क्रियाशक्ति से उत्पन्न होते हैं और शरीर में भिन्न २ क्रियायें करते हैं। दिल की उन सब क्रियाओं का एक ही नाम प्राण है। अन्य वायु उसी के भेद हैं। सब वायु प्राणवायु से पैदा होते हैं और मरणावस्था में सब प्राणवायु में मिल कर विछिन्न हो जाते हैं।

पाँचों वायु प्राणियों के शरीर से इस प्रकार क्रिया करते है—पहिला—प्राणवायु दिल में नासिका के अग्र भाग तक महावायुमंडल से सबन्ध रखता है। अन्य वायु जो शरीर के प्रत्येक अवयवों में क्रिया करने मे दूषित होते हैं। वह उन को प्राणियों के शरीर से बाहर महावायुमण्डल में फेंकता है और महावायुमंडल से वायु लेकर फेफड़े में पहुँचाता है उस का विस्तार फेफड़े से नासिका के अग्रभाग तक होता है। फेफड़े के अन्तर्गत दिल और नासिका के अग्र भाग से बाहर महावायुमण्डल होता है। अर्थात् प्राणवायु दिल से महावायु-मण्डल तक सम्बन्ध रखता है।

दूसरा—दिल से गुदा तक रहने वाले वायु को अपान वायु कहते है। प्राणियों के शरीर में मल-मूत्र उतरने की क्रियायें उसी से होती है।

तीसरा—दिल से सारे शरीर मे विचरनेवाला व्यान वायु है। शरीर मे रस, रुधिर की गति इसी से बनती है। शरीर के अव-यवों के काटे जाने पर रुधिर का बहाव भी इसी से होता है।

चौथा—कण्ठ में रहनेवाला उदान वायु है। इससे अन्न, जल निगला जाता है। वह कंठ से शब्द को भी फैलाता है, उदान वायु के तीन भेद होते है, जिनसे उभालना, जमुहाना और छींकना होता है। इन तीनों में शब्द होता है और शब्द की उत्पत्ति कंठ से होती है। इसलिये वे तीनों उदान वायु से उत्पन्न होते हैं।

पाँचवा—समान वायु है। जो प्राणियों के पेट में अन्न, जल को रस, रुधिर और मलमूत्र में विभाजित करता है।

शरीर में वायुतत्त्व के रजोगुण से प्रथम शारीरिक बल पैदा होता है। त्वचा में जो वायुत्तत्व के अवयव होते हैं, उन्हीं की पुष्टि से शरीर में बल का सञ्चार होता है। बल से फिर हस्त, पाद क्रियाये बनती हैं। हस्त, पाद क्रियाये शारीरिक बल पर ही निर्भर होती हैं। इसलिये हस्त-क्रिया और पादक्रिया का केन्द्र शारीरिक बल है। शरीर में बल जितना न्यूनाधिक होगा, उतनी ही हस्तपाद में क्रियाये भी न्यूनाधिक होंगी। बल त्वचा के प्रत्येक अवयव में फैला हुआ रहता है और उसमें हस्तपाद के क्रियाभेद उत्पन्न होते हैं।

हस्तक्रिया में लेना-देना, पाँव-क्रिया में चलना-फिरना इत्यादि समस्त शारीरिक क्रियाये शरीरवायुतत्त्व के रजोगुण और महावायुमण्डल के योग से होती हैं।

शरीरवायुतत्त्व के रजोगुण में प्राणी बाल अवस्था से तरुणावस्था तक जैसे जैसे पल, घण्टा, घड़ी, दिन, माह और वर्ष अधिक बढ़ते हैं। उतना ही उनके शरीर का विस्तार बढ़ता है। उतनी ही त्वचा के अवयवों की पुष्टि होती है, उतना ही शारीरिक बल बढ़ता है और उतना ही शरीर के अंग-प्रतिअंगों में होनेवाली क्रियाओं की पुष्टि होती है।

किन्तु अवस्था के बढ़ने पर पुष्टि सिर्फ शारीरिक रजोगुणी क्रियाओं की होती है। सत्त्वगुणी-ज्ञानेन्द्रियों की नहीं। वायु-

तत्त्व के मध्य रजोगुण मे शरीर की मध्य तरुणावस्था होती है। उसमें शरीर का सबसे अधिक लम्बा चौड़ा विस्तार बनता है और शरीर के अंग प्रति अंग अधिक पुष्ट होते हैं।

तरुणावस्था के पश्चात् शरीर वायुतत्त्व के रजोगुण मे क्रमशः तमोगुण अधिक बढ़ता जाता है। उस तमोगुण से-बृद्धावस्था में त्वचा ढल जाती है, बल घटने लगता है, हस्त-पाद क्रियायें ढीली पड़ जाती है।

दिल में चिन्ता और भय भी वायुतत्त्व के तमोगुण से पैदा होते है। चिन्ता और भय से प्राणी सूखते और भागते हैं। सुखाना वायुतत्त्व के तमोगुण से होता है। त्वचा का लूलापन भी वायुतत्त्व के तमोगुण से होता है।

प्राणियों के शरीर में वायुतत्त्व के सत्त्वगुण से उत्पन्न होने-वाली स्पर्श-ज्ञान के साधन त्वचा को ज्ञानेन्द्रिय और रजोगुण से उत्पन्न होनेवाली क्रिया के साधन हस्तपाद को कर्मेन्द्रियाँ कहते है।

प्राणियों से जितनी भी शारीरिक क्रियायें होती हैं, वे सब शरीर वायुतत्त्व और महावायुतत्त्व के योग से होती है। जैसे—कान में शब्दबोध की शक्ति है, किन्तु उसमें शब्द को शब्द के स्थान से महावायु पहुँचाता है और कान से हृदय के स्मरणस्थान तक उसको शरीर वायुतत्त्व पहुँचाता है।

त्वचा में स्पर्शज्ञान है। किन्तु शीत, उष्ण के स्थान से उनको महावायुमण्डल ग्रहण करके त्वचा मे पहुँचाता है।

त्वचा शरीर के अवयवों द्वारा उनके परिणाम को दिल में पहुँचाता है।

आंखों में प्रकाश है। लेकिन उसका फैलाव महावायुमण्डल में होता है। जिससे दृष्टि को दृश्यमान सीमा में रूप का बोध होता है।

जिह्वा में रस बोध शक्ति है। लेकिन रस शोषणशक्ति उसको शरीरवायुतत्त्व और महावायुतत्त्व के योग से प्राप्त होती है। रस को जिह्वा से मेदा में भी शरीर वायुतत्त्व पहुँचाता है।

मलमूत्र को त्यागने की क्रिया भी शरीरवायुतत्त्व से होती है।

नासिका में घ्राणशक्ति है, किन्तु सुगन्ध और दुर्गन्ध के भेदों को उनके स्थानों से महावायुमण्डल उड़ाकर नासिका में पहुँचाता है। नासिका में शरीरवायुतत्त्व उनको दिल में और दिल से मस्तिष्क में पहुँचाता है।

हाथों का लेना देना आदि समस्त हस्तक्रियायें शरीरवायु-तत्त्व और महावायुतत्त्व के योग से होती हैं। पैरों का चलना फिरना आदि समस्त क्रियायें शरीरवायुतत्त्व और महावायुतत्त्व के योग से होती हैं।

वाणी कंठ से उत्पन्न होती है। महावायुमण्डल उसको महा-काश में फैलाता है। वहां से शरीरवायुतत्त्व उसको शरीर आकाश के कानों में पहुँचाता है।

शरीर का बढ़ना घटना, मस्तिष्क में विचारने की क्रिया और

प्राणवायु का बाहर भीतर विचरना, ये सब क्रियायें शरीर-वायुतत्त्व और महावायुतत्त्व के योग से होती है।

वायुतत्त्व के सत्त्वगुण से प्राणियों के शरीर में त्वचा, दिल, दिमाग। रजोगुण से प्राण बल हस्त-पादक्रियायें और तमोगुण से चिन्ता, भय, त्वचा का ढलना और लूलापन होता है।

शरीरवायुतत्त्व के उत्पन्न होते ही उसके रजोगुण मे कुछ अधिक पोपित तमोगुण के वढ़ने से शरीरअग्नितत्त्व उत्पन्न होता है। उसके सत्त्वगुण से प्रथम प्राणियों के शरीर का रूप वनता है। शरीर मे रूप के सत्त्व, रज, तम तीन भेद होते है।

पहिला—शारीरिक अग्नितत्त्व रूप के सत्त्वगुण से नेत्रों का प्रकाश उत्पन्न होता है।

दूसरा—शारीरिक अग्नितत्त्व के रजोगुण से शरीर में जठराग्नि पैदा होती है।

तीसरा—शारीरिक अग्नितत्व के तमोगुण से क्रोध उत्पन्न, होता है।

प्राणियों के नेत्रों के प्रकाश तीन प्रकार के होते है। सृष्टि में कुछ प्राणी ऐसे हैं, जिन के नेत्रों के प्रकाश को, प्रकाश के विस्तार में रूप का वोध होता है। जैसे—मनुष्य, गाय, भैस हाथी, घोड़ा इत्यादि।

कुछ प्राणी ऐसे हैं, जिनके नेत्रों को अन्धकार के विस्तार मे रूप का वोध होता है। जैसे—उलूक पक्षी आदि अनेक निशाचर।

कुछ प्राणी ऐसे हैं, जिनके नेत्रों को प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तार में रूप का बोध होता है। जैसे—बिल्ली, व्याघ्र, शेर आदि।

विश्व के अन्तर्गत महाअग्नि से उत्पन्न होनेवाले समस्त रूपों के भी प्रधान तीन ही भेद होते हैं। रूप के सत्त्वगुण से प्रकाशमय दिव्य और शुक्ल रङ्ग-रूप उत्पन्न होते हैं। तमोगुण से काले और नीले। रजोगुण से गोरे और लाल।

अन्य रङ्गरूप जितने भी विश्व के अन्तर्गत हैं इन्हीं के मेल से पैदा होते हैं।

रूपों का बोध करनेवाले नेत्रों का प्रकाश भी तीन प्रकार का होता है—सत्त्वगुणी प्रकाश, तमोगुणी प्रकाश और रजोगुणी प्रकाश।

सत्त्वगुणी प्रकाश से उत्पन्न होनेवाले नेत्रों को प्रकाश के विस्तार में रङ्ग-रूप का बोध होता है।

तमोगुणी प्रकाश से उत्पन्न होनेवाले नेत्रों को अन्धकार के विस्तार में रङ्ग रूप का बोध होता है।

रजोगुणी प्रकाश के उत्पन्न होनेवाले नेत्रों को प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तार में रङ्ग-रूपों का बोध होता है।

सृष्टि में सफेद, पीले, काले, नीले, गोरे, रक्त, हरे इत्यादि तमाम रङ्ग-रूप व प्राणियों के रूप और नेत्रों के प्रकाश अग्नि-तत्त्व के समान गुण से उत्पन्न होते हैं। इसलिए नेत्रों से रङ्ग-रूप का बोध होता है।

पृथ्वी के गर्भ की अग्नि महाअग्नि के रजोगुण से और प्राणियों में जठराग्नि शारीरिक अग्नितत्त्व के रजोगुण से उत्पन्न होती है। जठराग्नि शरीर के प्रत्येक अवयवों में फैली हुई रहती है। वह प्रथम शरीरवायुतत्त्व के केन्द्रस्थान दिल से उत्पन्न होती है। वहाँ से शरीर के प्रत्येक अवयव में फैलती है।

जठराग्नि उदर में खाद्य पदार्थों को भस्म करती है। साँस वायु व पीने खाने के पदार्थ खाद्य पदार्थ होते हैं। सब प्रकार के खाद्य पदार्थों मे जो जहरीला अंश होता है जठराग्नि उसको भी भस्म करती है। उसके सूक्ष्म तमोगुण से प्राणियों में क्रोध उत्पन्न होता है।

यद्यपि जठराग्नि खाद्य पदार्थों के जहरीले अंश को भस्म करती है, तथापि भस्म हुआ जहरीला अंश तमोगुण मे परिणत होकर प्राणियों मे क्रोध बनता है।

जिन खाद्य पदार्थों मे अधिक जहरीला अंश होता है, वे जठराग्नि को या तो बुझा देते है जिससे प्राणियों की मृत्यु होती है। या जठराग्नि को मन्द कर देते हैं, जिससे प्राणी बीमार होते है।

जठराग्नि की विकृति से शरीर मे ताप पैदा होता है।

क्रोध दिल के अग्निस्थान मे निवास करता है। बढ़ने पर वह आँख, मुँह, हाथ और पाँव तक फैलता है। आँख में फैलने से वह आँखें लाल पीली बनाता है।

मुँह में फैलने से भयंकर शब्द अथवा कटुवाणी उत्पन्न करता है और दाँतों को खटखटाता व पीसता है। हाथ, पाँव में फैलने से मारपीट और धावना उछलना कराता है।

अग्नितत्त्व के सत्त्वगुण से प्राणियों के शरीर का रूप, नेत्रों में प्रकाश, और वनस्पतियां व सकल पदार्थों के रङ्ग उत्पन्न होते हैं।

अग्नितत्त्व के रजोगुण से प्राणियों के मुँह और जठराग्नि और आकाश, वायु, जल, पृथ्वी के गर्भ की अग्नि पैदा होती है।

अग्नितत्त्व के तमोगुण से दाहक शक्ति, और प्राणियों के शरीर में क्रोध उत्पन्न होता है।

प्राणियों के स्थूल शरीर में रूप के तीन भेद होते हैं। सत्त्वगुणी भेद से शुक्ल और प्रकाशवान् रूप होते हैं और रूपों का ज्ञान सत्त्वगुणी नेत्रों से प्रकाश के विस्तार में होता है। तमोगुणी भेद से काले और नीले रूप पैदा होते हैं और तमोगुणी नेत्रों को रूपों का ज्ञान अन्धकार के विस्तार में होता है। रजोगुणी भेद से गोरे और लाल रूप पैदा होते हैं और रजोगुणी नेत्रों को रूपों का ज्ञान प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तार में होता है।

अग्नितत्त्व के रजोगुण से पोषित तमोगुण के कुछ अधिक बढ़ने पर शारीरिक जलतत्त्व पैदा होता है। वह अग्नितत्त्व के तेज से द्रव्य बनकर प्रथम रस बनता है। उसको शरीर

मे विचरनेवाला वायु नाड़ियों द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव मे प्रवाहित करता है। उस रस के सत्त्व, रज, तम तीन भेद होते हैं।

उसके सत्त्वगुण से प्राणियों की रसना बनती है। विश्व के अन्तर्गत खट्टे, मीठे, खारे, कड़ुवे इत्यादि जितने रस होते है, सब महाजलतत्त्व के सत्त्वगुण अंशों से पैदा होते हैं। प्राणियों की रसनाओं और समस्त रसों की बनावट मे जलतत्त्व का समान गुण होता है। अथवा समस्त रसों की ज्ञानशक्ति से रसना की उत्पत्ति होती है। इसलिये विश्व के अन्तर्गत उत्पन्न होनेवाले समस्त रसों का ज्ञान प्राणियों को रसना के द्वारा होता है। जितने रस हैं सबका ज्ञान रसना से होता है। रसना को रसों का पृथक् पृथक् ज्ञान होता है।

खाने पीने और साँस लेने से जिस रस का आहार होता है वह प्रथम प्राणियों के अन्नकोप में पहुँचता है। वहाँ से दिल के जलकोष में पहुँचकर पृथक् पृथक् तीन भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग जिसमें रस का सत्त्वगुण होता है, वह दिल के जलकोष से फेफड़े मे पहुँचता है और वहाँ से रसना मे पहुँचकर उसमे ज्ञान-शक्ति की वृद्धि करता है। अथवा जल का सत्त्वगुण भाग प्रथम दिल के जलकोष मे पहुँचता है, वहाँ से फेफड़े में और फेफड़े से रसना में पहुँचता है।

प्राणियों के शरीर मे जलतत्त्व उनके पीने-खाने और साँस लेने के पदार्थों के जल विभाग से बढ़ता है।

शरीर में जलतत्त्व का जो रजोगुणी भाग होता है वह शारीरिक अग्नितत्त्व के रजोगुण से द्रव्य बनकर रक्त रूप धारण करता है। अर्थात् प्राणियों के शरीर मे विचरनेवाले रस का लाल रङ्ग बनता है, जिसको रक्त व रुधिर कहते है। रजोगुणी शारीरिक रस के भी तीन पृथक् पृथक् भेद होते हैं – रुधिर, पसीना और मूत्र।

रस का रजोगुणी भाग दिल के जलकोष से प्रथम जठराग्नि के केन्द्र में पहुँचाता है। वहाँ वह जठराग्नि से रस बनकर द्रवित हो जाता है। वहाँ से फिर रजोगुणी वायु के केन्द्र मे पहुँचता है। दिल के जिस स्थान में प्राण और समान वायु का मेल होता है वह रजोगुणी वायु का केन्द्रस्थान है। वहाँ से रस रजोगुणी वायु के कारण वहकर लिगस्थान में पहुँचता है। वहाँ रस परिपक्व बनकर रुधिर बनता है। उसके परिपक्व विभाग से लिंग की क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है। इसलिये शारीरिक जलतत्त्व के रजोगुणी अंश से लिग उत्पन्न होता है। लिग के मूल मे लिगक्रिया के दो भेद है। प्रथम भेदवाली क्रिया रुधिर बनाती है और रुधिर को नाड़ियों के द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव में पहुँचाती है। लिग की क्रिया से रुधिर बनाने मे जितना रस अनरस हो जाता है, अथवा उसमे रजोगुणी अंश का अभाव होने से केवल तमोगुणी जल रह जाता है उसको लिंग की दूसरी तामसी क्रिया लिग के मूत्रकोष में जमा करती है। और वहाँ मूत्र को उसकी सीमा से

अधिक बढ़ने पर वही क्रिया उसको लिंग द्वारा बाहर फेंकती है।

जिन प्राणियों के शरीर में लिंग की रजोगुणक्रिया के स्थान में तमोगुण उत्पन्न हो जाता है, उनके लिंगस्थान में रस के पहुँचने से रुधिर की यथार्थ क्रिया नहीं बनती। तमोगुण के कारण वह रस अनरस होकर लिंग के समीप जमा हो जाता है। उसी से जलन्धर रोग होता है।

शरीर में दौरा करनेवाले रुधिर मे किसी प्रकार कुछ तामसता आने से प्राणियों के शरीर मे पसीना पैदा होता है। वह त्वचा के छिद्रों द्वारा शारीरिक वायुतत्त्व के कारण बाहर को बहता है।

मूत्र और पसीना के रुकने से या रुधिर के सूखने से प्राणियों में आलस्य उत्पन्न होता है। उसका फैलाव दिल से रुधिर की सीमा तक होता है। आलस्य आ जाने से रुधिर की गति भी शिथिल हो जाती है और प्राणी अपने उद्देश्य से शिथिल हो जाते हैं।

जल के सत्त्वगुण से प्राणियों के शरीर मे रसना, तमोगुण से आलस्य और रजोगुण से लिंग उत्पन्न होता है। लिंग की रजोगुणक्रिया से शरीर में जलतत्त्व के तीन भेद होते हैं अर्थात् रुधिर, पसीना और मूत्र।

लिंग के रजोगुणी स्थान में तमोगुण उत्पन्न होने से प्राणियों के शरीर में जल सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं।

शुक्र और रज मे भी शारीरिक जलतत्त्व का अधिक भाग होता है। किन्तु वे केवल शरीरजलतत्त्व से ही नहीं बनते। शुक्र जल के साथ शारीरिक तत्त्वों के सत्त्वगुण से और रज जल के साथ शारीरिक तत्त्वों के तमोगुण से युक्त होता है।

शारीरिक जलतव के उत्पन्न होते ही उसमे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने से जल मे कुछ गाढ़ापन आ जाता है और उसमे ठीक उसी तरह गन्धगुण आ जाता है, जैसे बासी जल अथवा कीचड़ मे गन्ध पैदा होती है।

शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के उत्पन्न होते ही उसमे महापृथ्वी के समस्त गन्धगुण आ जाते है। उसके सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते हैं।

उसके सत्त्वगुण भेद से प्राणियों के शरीर मे प्राणशक्ति उत्पन्न होती है। जो महापृथ्वीतत्त्व से उत्पन्न होनेवाले सुगन्ध और दुर्गन्ध आदि समस्त गन्धविभागों का बोध करती है। वह शारीरिक पृथ्वीतत्त्व की ज्ञानेन्द्रिय है। प्राणियों को उसी से महापृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले समस्त गन्धों का पृथक्-पृथक् ज्ञान होता है।

शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के रजोगुण से गुदा बनता है। मॉस बनने से पहिले शरीर मे जो चीज बनती है उसको गुदा कहते है। गुदा के दो भाग होते है—उसके प्रथम भाग से ऑतें, मेदा, फेफड़ा, कलेजा, और दिल का स्थूलपन बनता है। आँतों की जड़ मे जो मलद्वार होता है उसमें रजोगुण की

क्रियाशक्ति रहती है। जिससे मल उतरता है, उसको भी गुदा कहते हैं और वह शारीरिक पृथ्वी तत्त्व की कर्मेन्द्रिय है।

माँसवाले गुदा से नाड़ियों का स्थूलपन, मांस, चर्म, अस्ति, नाखून, बाल और दाँत उत्पन्न होते हैं।

मज्जा, शुक्र और रज का स्थूलपन भी पृथ्वीतत्त्व से बनता है।

शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के तमोगुण से प्राणियों में निद्रा उत्पन्न होती है। शारीरिक पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न होते ही उसमें छाया अथवा परछाईं पैदा हो जाती है।

परछाईं, आकाश, वायु, अग्नि में नहीं आसकती। जल में भी परछाईं तभी आ सकती है, जब उसमें पृथ्वी का गुण आ जाता है तब कुहारा या बादल की हालत में पानी के छोटे-छोटे अणु जमकर छोटी-छोटी पृथ्वियाँ बन जाती है। इसलिये उनके झुण्डों से छाया बनती है। लेकिन जब तक कुहारा या बादल पानी के रूप मे हवा में रहता है। अथवा जल पृथ्वीगुण धारण नहीं करता। तब तक उससे छाया उत्पन्न नही होती। इसलिये छाया पृथ्वीतत्त्व से पैदा होती है।

जिस तरह रात्रि में महापृथ्वी अपनी छाया से अपने को ढक लेती है। उसी तरह शारीरिक पृथ्वीतत्त्व की आभ्यन्तर छाया प्राणियों की चेतना शक्ति को ढक लेती है, उसी को निद्रा कहते है।

प्राणीमात्र प्रायः अधिकतर रात्रि को ही सोते है, क्योंकि

रात्रि को पृथ्वी छाया धारण करती है। इसलिये अधिकतर रात्रि में ही प्राणियों को निद्रा ढकती है।

प्राणियों में शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के सत्त्वगुण से प्राण, रजोगुण से गुदा और तमोगुण से निद्रा उत्पन्न होती है।

इसी तरह महाचैतन्य की चैतन्य सत्ता से और सबतत्त्वों के सत्त्व, रज, तम गुणों के प्रभाव से पृथ्वी पर प्रथम पुरुष मनुष्य स्थूल शरीर मे उत्पन्न हुआ। उसमें शुक्र की उत्पत्ति हुई। शुक्र पुरुष प्राणियों के शरीर मे महाचैतन्य की चेतनता और सब तत्त्वों के सत्त्वगुण के अंश से उत्पन्न होता है।

उसके पश्चात् पोषित प्रकृति और सबतत्त्वों की उत्पादन शक्ति से स्त्री मनुष्य स्थूल शरीर मे उत्पन्न हुई, उसमें रज की उत्पत्ति होती है। रज स्त्रियो के खाद्य पदार्थों के तमोगुण से बनता है। इसके दो भेद होते है—शुक्ल और कृष्ण।

जिन प्राणियो के स्थूल शरीर मे शुक्र की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर मे पुरुष होते है। और जिन प्राणियों के स्थूल शरीर मे रज की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में प्रकृति अथवा स्त्रियाँ होती है।

स्त्रियों के रज से उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की, महाप्रकृति की लक्ष्मी, सरस्वती, काली तीन अवस्थाओं की तरह, बाल, तरुण और वृद्ध तीन अवस्था होती हैं। बाल्यावस्था लक्ष्मी, तरुण सरस्वती और वृद्धावस्था काली है। पुरुप प्राणियों की भी बाल तरुण, और

वृद्ध ये तीन अवस्थायें रज के विकार से होती है। जिससे गर्भ में स्थूल शरीर बनता है।

जिस तरह महाप्रकृति लक्ष्मी (बाल) अवस्था से सरस्वती (तरुण) अवस्था तक अपने अन्तर्गत पोषित तमोगुण से महाचैतन्य आधार मे विश्व की उत्पत्ति के लिये चौदह प्रकार की विभिन्न चौदह लोककलायें उत्पन्न करती है। उसी तरह स्त्रियों की बाल अवस्था से तरुणावस्था तक उनकी योनियों मे रज के तमोगुण से विभिन्न चौदह प्रकार की तमोगुणी क्रियाओं का सञ्चार उत्पन्न होता है। उन्हीं क्रियाओं से गर्भ में स्थूल शरीर का आकार बनता है।

स्त्रियों की बाल अवस्था में रज उत्पत्ति के लिये समर्थ नही हो सकता। गर्भ में केवल उसकी चौदह प्रकार की क्रियाओं का आकार बनता रहता है, जिनको योनि चौदह लोक कहना चाहिये। इसलिये स्त्रियों की बाल अवस्था में बच्चों की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

स्त्रियाँ बाल अवस्था से जब तरुणावस्था में प्रविष्ट होती है, तब वे भी महाप्रकृति की तरह सरस्वतीरूपा होती हैं। महाप्रकृति जिस तरह सरस्वती अवस्था मे विश्व को उत्पन्न करनेवाले चौदह प्रकारवाली विदित क्रियाओं का विकास करती हैं, उसी तरह स्त्रियों की तरुणावस्था में उनके गर्भ मे भी बच्चों के शरीर को उत्पन्न करनेवाले रज के चौदह प्रकार के उत्पादक क्रियाभेद उत्पन्न होते हैं।

महाप्रकृति की जिस तरह रचना और विनाश दो गतियाँ होती हैं, उसी तरह स्त्रियों के रज की भी रचना और विनाश दो गतियां होती हैं।

जिस तरह महाप्रकृति रचना गति में चैतन्य सत्ता से विश्व की उत्पत्ति करती है और विनाश गति में विश्व का विनाश कर महाचैतन्य में लुप्त होती है, उसी तरह स्त्रियों की योनियों में रज की सृजनशक्ति, शुक्र की चैतन्य सत्ता से गर्भ के चौदह लोक—आकार में प्राणियों के स्थूल शरीर की रचना करती है और विनाश गति में रज की रचनाशक्ति गर्भ में लुप्त रहती है। उसमें स्त्रियों की योनियाँ शुक्र को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होतीं। वह रज की विनाश गति है।

जिस तरह महाचैतन्य के सत्त्वगुण प्रकाश—आधार में महा-प्रकृति अपने उत्पादक—तमोगुण से रचना गति में चौदह लोकों की उत्पत्ति करती है और विनाशी गति में चौदह लोकों के आकार पर अन्धकार फैलाते हुये चैतन्य में लुप्त होती है। उसके स्वरूप का ठीक उदाहरण चन्द्रविम्ब पर घटता है। जैसे पूर्णमासी के पूर्ण प्रकाश और अमावास्या के पूर्ण अन्धकार के योग से शुक्ल और कृष्ण पक्ष की अन्य चौदह चौदह तिथियाँ होती हैं। अथवा जैसे चन्द्रविम्ब तीस दिन के चक्र में घूमकर पूर्णमासी सहित पन्द्रह दिन का शुक्ल पक्ष और अमावास्या सहित पन्द्रह दिन का कृष्ण पक्ष करता है, उसी तरह महाप्रकृति के शुक्ल पक्ष में उसके चौदह लोकों

में विश्व की उत्पत्ति होती है और उसके कृष्ण पक्ष में चौदह लोकों में अन्धकार बढ़ जाने से विश्व का विनाश होता है।

वैसे ही सरस्वती स्त्रियों की योनियों में रज का भी तीस दिन का भ्रमण होता है। रज के भी शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते है। उसके शुक्ल पक्ष मे रचना और कृष्ण पक्ष में विनाश शक्ति होती है। रज अपने शुक्ल पक्ष में अपनी सृजन-शक्ति से स्वजातीय शुक्र को ग्रहण कर उसकी सत्त्वगुण-सत्ता से चेतन और पोषित होकर गर्भ में बच्चों का स्थूल शरीर बनाता है। लेकिन रज अपने कृष्ण पक्ष में शुक्र को ग्रहण करने मे असमर्थ होता है।

स्त्रियों की योनियों के शुक्ल पक्ष मे उज्ज्वल और कृष्ण पक्ष में रक्त रज होता है।

जिस तरह अमावस्या के पूर्ण तमोगुण के उपरान्त चन्द्रमा का शुक्ल पक्ष होता है, वैसे ही स्त्रियों की योनियों मे रज के पूर्ण तमोगुणी रक्त के उपरान्त उसका शुक्ल पक्ष होता है। उसी मे उत्पादन शक्ति होती है। जिससे रज उन दिनों स्वजातीय शुक्र को ग्रहण कर गर्भ में बच्चों का स्थूल शरीर रचने में समर्थ होता है।

जिस तरह पूर्णमासी के पूर्ण प्रकाश के उपरान्त चन्द्रविम्ब का कृष्ण पक्ष होता है। वैसे ही स्त्रियों की योनियों मे रज पूर्ण उज्ज्वल होने के उपरान्त कृष्ण गति की ओर बढ़ता है। रज की उस गति में न तो शुक्र को ग्रहण करने की और न

प्राणियों के शरीर रचने की शक्ति होती है। इसलिये रज की कृष्ण गति में गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

जिस तरह स्त्रियों की तरुणावस्था में उनके गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति के पश्चात् कुछ काल के लिये रज की उत्पादन क्रिया विनशित होकर योनि में लोप हो जाती है। उसी तरह महाप्रकृति अपनी सरस्वती अवस्था में चौदह लोकों की उत्पत्ति के पश्चात् अल्प लोक और अल्प जीवों का विनाश कर अल्प प्रलय करती है।

रज में जो सृजन और विनाश गति होती है, उन्हीं के योग से उत्पन्न होनेवाले प्राणियों का स्थूल शरीर जीवन और मरण के चक्र में घूमता है। गर्भ से बच्चों के पैदा होने के पश्चात् स्त्रियों की योनियों में रज की दोनों प्रकार की गतियाँ कुछ काल के लिये विनशित हो जाती हैं और उनके स्थान में अन्धकार-तमोगुण भर जाता है।

स्त्रियों की तरुणावस्था में रज महाप्रकृति की सरस्वती अवस्था की तरह गर्भ में कई वार बच्चों की उत्पत्ति करता है। और कई वार गर्भ में विनाश गुण धारण कर अल्प प्रलय करता है। अर्थात् उत्पादन क्रिया से गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति करता है और उनकी उत्पत्ति के पश्चात् गर्भ में कुछ काल के लिये विनाशगुण धारण कर योनिलोकों की अल्प प्रलय करता है।

स्मरण रहे कि स्त्रियों का उत्पादक रज जब स्वजातीय

शुक्र को ग्रहण करता है, तब वह गर्भ में स्थूल शरीर की अवस्था को प्राप्त होता है। रज की जो शुक्ल और काली दो प्रकार की गतियाँ होती है। उनमें से प्रथम शुक्ल गति शुक्र की चैतन्य सत्ता से गर्भ की स्थिति करती है और उसके पश्चात् काली गति भी शुक्र की सत्ता से उत्पादन शक्ति मे मिल जाती है। उन दोनों गतियों के कार्य से गर्भ मे बच्चों के स्थूल शरीर की रचना होती है।

गर्भ में प्राणियों का पूर्ण शरीर बनने पर फिर वे दोनों गतियाँ स्त्रियों के शरीर मे पृथक् २ कार्यों मे विभाजित हो जाती है। काली गति का रज अपने तमोगुण से गर्भ से बच्चों को बाहर फेंकती है और शुक्ल गति का रज शुक्ल वर्ण से दूध मे परिणित होकर स्त्रियो के स्तनों मे पहुँचता है।

जिस तरह बच्चों के पोषणार्थ स्त्रियों के सर्वांग रस से स्थनों मे दूध एकत्रित होता है, वैसे ही विश्व के पोषणार्थ महाप्रकृति के सर्वांग से चन्द्रमा मे सोमरस एकत्रित होता है। जो पृथ्वीतल मे वायु जल और वनस्पतियो मे उतरकर खाद्य पदार्थों द्वारा प्राणियो का पोषण करता है।

रज का भ्रमण निम्नलिखित तीन प्रकार से होता है:—

प्रथम् रज की शुक्ल गति के तमोगुण से स्त्रियों के गर्भ में बच्चों के शरीर जाग्रत होते हैं और काली गति के तमोगुण से शरीर मे मृत्यु का सञ्चार होता है।

दूसरा स्त्रियो का शारीरिक रस जो उनकी योनियों मे रज

बन कर शुक्ल और काली दो प्रकार की गतियों में भ्रमण करता है। बच्चों की उत्पत्ति के समय उनकी काली गति के रजोगुणी रस में जो सत्त्वगुण का योग होता है, वह शुक्ल गति के रजोगुणी रस में सम्मिलित होता है, और शुक्ल गति के रजोगुणी रस में जो तमोगुण का योग होता है। वह काली गति के रस में मिल जाता है। इसलिये काली गति का रस बच्चों के उत्पन्न काल में रक्त बनता है और शुक्ल गति का रस शुक्ल वर्ण से दूध बनता है।

तीसरा-स्त्रियों की योनियों में जो रज शुक्ल और काली दो प्रकार की गतियों में बराबर भ्रमण करता है। वह उनके सारे शरीर में विचरने वाले रस की परिपक्व अवस्था में बनता है। स्त्रियों के शारीरिक रस का रजोगुणी परिपक्व स्थान योनि है।

स्त्रियों के शरीर में भ्रमण करनेवाला रस परिपक्व अवस्था में उन की योनियों में पहुँचता है और वहाँ रज में परिणत होता है।

स्त्रियों की वृद्धावस्था काली अवस्था है। उस अवस्था में रज की शुक्ल और काली दोनो प्रकार की गतियाँ विनशित हो जाती हैं। जिससे उनकी बच्चा उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

तरुणावस्था में भी कोई २ स्त्रियाँ कालीरूपा होती हैं। उनकी योनि में रज की विनाश क्रिया बनी रहती है। ऐसी स्त्रियों के भी तीन भेद होते हैं:—उनमें से कुछ स्त्रियाँ नपुंसक होती हैं।

उनकी योनि मे रज की शुक्ल और काली दोनों प्रकार की गतियाँ नहीं बनतीं। एक तीसरे ही प्रकार की विनाशी-गति उत्पन्न हो जाती है। उन स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं। जिनकी योनि मे रज की केवल शुक्ल गति उत्पन्न होती है। जिसके कारण ऐसी स्त्रियों को रजस्वला नही होता और न उनके रज मे बच्चा उत्पादन करने की शक्ति होती है।

तीसरे प्रकार की स्त्रियों की योनियों मे केवल विनशित गति का रज होता है। ऐसी स्त्रियों को रजस्वला तो होता है, किन्तु उनके रज में केवल विनाशी शक्ति होती है। जिससे उनका रज शुक्र को ग्रहण करने मे असमर्थ होता है। उनके गर्भ में भी बच्चों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। ऐसा रज अधिक तमोगुण के कारण कई एक स्त्रियों की योनियों मे अधिक स्रवित होता है। जिसका समय भी नियत नहीं होता।

ये सब प्रकार की स्त्रियाँ काली रूपा होती हैं। उन सबके रज मे विनाशी क्रिया होती है। और उनसे सन्तान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। ये काली स्त्रियों के भेद होते है। इसी तरह स्थूल-शरीर मे स्त्रियों के अनेक भेद होते हैं।

सरस्वती स्त्रियों के रज की रचना शक्ति में भी यदि कोई लोक क्रिया का अभाव हो अर्थात् उनकी योनियों में रज की शुक्ल और काली दोनों गतियों में चौदह चौदह प्रकार की यथार्थ

रचना शक्तियाँ न बननी हों, तो उनके रज में शुक्र को ग्रहण करने की शक्ति तो अवश्य होती है, किन्तु गर्भ में प्राणियों का पूर्ण स्थूल शरीर नहीं बन सकता, जिससे गर्भ में कई प्रकार के अधूरे शरीरों की उत्पत्ति होती है।

सरस्वती स्त्रियों की योनियों में प्रवेश करने वाला शुक्र यदि किसी प्रकार दो तीन या अधिक बिंदु भेदों से प्रविष्ट करे तो उन विन्दुओं की पृथक् २ चैतन्य सत्ता और रज की पूर्ण रचना शक्तियों से गर्भ में दो तीन या अधिक बच्चों की शरीर रचना होती है।

इसी तरह एक ही प्रकृति के विकार भेदों से सृष्टि की उत्पत्ति में भिन्नता होती है। महाचैतन्य के सत्वगुण प्रभाव के कारण सब तत्त्वों के योग से उत्पन्न होनेवाले जिन प्राणियों के शरीर में शुक्र की उत्पत्ति होती है। वे स्थूल शरीर में पुरुष होते हैं। और महाप्रकृति के तमोगुण प्रभाव के कारण सब तत्त्वों के योग से उत्पन्न होनेवाले जिन प्राणियों के शरीर में रज की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में स्त्रियाँ होती हैं।

इसी तरह समस्त प्राणियों के शरीर में पुरुष और स्त्री भेद होते हैं और इसी तरह समस्त सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

अगले-अध्यायों में विश्व को उत्पन्न करनेवाले पृथक् २ तत्त्वों के गुण कार्यों का वर्णन किया जायगा।

अध्याय—३

परमतत्त्व महापुरुषचैतन्य

सूर्य्य, पृथ्वी, नक्षत्र, ग्रह, अनन्त पिण्ड व ब्रह्माण्ड, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दिन, रात्रि, तिथि, पक्ष, माह, साल, शताब्दि, युग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, अहङ्कार, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, कर्ता, करण, क्रिया, मनुष्यादि समस्त प्राणी और अनन्त विराट् एवं सब चराचर से प्रथम क्या था ?

इन सबसे प्रथम सर्वव्यापक प्रकाशमय महाकार निर्गुण ब्रह्म था। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म है, नित्य है, चैतन्य स्वरूप है। वह न तो नेत्रों की सामर्थ्य से देखने योग्य है, न वाणी की शक्ति से वर्णन करने योग्य और न उसके उदाहरण मे कोई वस्तु दिखाने योग्य है।

केवल इतना कहा जा सकता है कि वायु जो उस सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल से स्थूल है वह भी जब दृष्टि-गोचर नहीं हो सकता, न उसका रङ्ग रूप ही वर्णन किया जा सकता है, न कर्मेन्द्रियों से ग्रहण हो सकता है, केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसका कुछ बोध होता है। तब वह सूक्ष्म तो स्वत ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, वायु का भी प्राण वायु, वायु का सञ्चालक,

वायु का चेतन्य रूप, अगोचर और अकथनीय है। वह अति-सूक्ष्म होने पर भी सर्वज्ञ है, और असीम व्यापक होने से अनन्त है।

अत कुछ महाधुरन्धर ज्ञानियों ने ज्ञानेन्द्रियों मे प्रधान बुद्धि द्वारा उस अनन्त और अतिसूक्ष्म का किसी अंश मे इस तरह अनुभव किया, जैसे कोई तरैया अगाध समुद्र के किसी अंश मे तैरकर विचार द्वारा उसका अनुभव करता है।

वह सूक्ष्म कैसा है? सत्य है, चैतन्य है, प्रकाशमय है, शुद्ध स्वरूप है। नित्य है, अखण्ड है, अनादि है, असङ्ग है, सर्वव्यापक और अनन्त है। समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता, ऐसा अविनाशी है। कालातीत है, प्रकृति का आधार है। इसलिये प्रकृति से भी श्रेष्ठ, पर और विश्व को पैदा करने वाले बीज की चेतन सत्ता की तरह है।

जैसे हरे, पीले, लाल, रङ्ग-बिरङ्गे गोलाकार लाखो पत्ते। लम्बे आकार की हजारो टहनियाँ। नाना रङ्ग और आकार के लाखों पुष्प और फल। भिन्न भिन्न सूरत की अगणित जडे। सारा वटवृक्ष, जिसको हम देख रहे है, एक सूक्ष्म बीज के अन्तर्गत है। जिसके अन्तर्गत देखने से वृक्ष कुछ भी नहीं दिखाई देता है अर्थात् वह निराकार रूप मे बीज की चैतन्य सत्ता से पोषित और सुरक्षित है। उसी से सारा वटवृक्ष असंख्य जड़ों, सहस्रों टहनियों, लाखों पत्तों, नाना पुष्पों और फलों

सहित हरा भरा बना है। वैसे ही उस सूक्ष्म बीज की चैतन्य सत्ता से पोषित और रक्षित निराकार प्रकृति से यह सारा व्यापक विराट् ब्रह्माण्ड, ऊर्ध्व वटवृक्ष की तरह पैदा होता है। जिसकी जड़ माया, जड़ की सिचाई सत्त्वगुण अंकुर उत्पत्ति, पत्ते कामनायें, पुष्प इच्छायें व भुः भुवः स्व' महः जनः तपः सत्य आदि लोक, तना आकाश, फल सूर्य चन्द्रादि, और टहनियाँ आकर्षण शक्तियाँ हैं। जो इस वृक्ष के जड़, तना, टहनियाँ, पत्ते, पुष्प, और फलों को अपनी २ नियत जगहों पर रखनेवाली है। उस सूक्ष्म चैतन्य से यह सारा विराट् विश्व उत्पन्न और पोषित हो रहा है।

वह वायु मे प्राण वायु, अग्नि-सूर्य्य मे तेज-प्रकाश, जल चन्द्रमा मे रस, पृथ्वी मे उर्वरा, पिण्डो मे आकर्षण, नक्षत्र विजली में चमक, लोकों मे रचनात्मक, जीवधारियों मे आत्मा, पुरुषों मे शुक्र और पुरुपार्थ, बलवानो में बल, ज्ञानियों में ज्ञान, तपस्वियों में तप, इन्द्रियों में मन, देवताओं में महादेव, स्वर्ग मे आनन्द, संसार मे जीवन, ओषधियों मे सोमरस, पुष्पों में सुगन्ध, फलों में मधुरता, वृक्ष मे बीज, बीज मे उत्पादक, उत्पत्ति मे कामदेव, प्रकृति में चैतन्यता और विश्वविराट् में परमात्मा है।

इस ध्येय पर उस सूक्ष्म और सर्वव्यापक ब्रह्म को ही महाचैतन्य मानते है, जो विश्व ब्रह्माण्ड को चैतन्य करने वाला आत्मा से भी श्रेष्ठ परमात्मा है। अनन्त ब्रह्माण्डों

के समस्त सूर्य्यों सहित भूलोक सहित समस्त लोक, चन्द्रमा सहित अनन्त ग्रह, आकाश सहित पाँचों तत्त्व, उनके भेद सहित पच्चीस उपतत्त्व, सतोगुण सहित तीनों गुण, मीठा रस सहित षड् रस, मनुष्यगण, देवगण, देवों से भी श्रेष्ठ महादेव गण, पृथ्वी आदि सकल पिण्डों के निवासी, थलचर, जलचर, नभचर, स्थावर, जङ्गम आदि समस्त वर्णन करने योग्य और वर्णन से भी परे अवर्णनीय उस महाचैतन्य की सत्ता मे चेतन और दृश्यवान हो रहे है।

सब मिलकर एक विराट् पुरुष बनता है। विराट् पुरुष के वे सब अलग अलग अङ्ग हैं। उन सबका आपस में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त एक दूसरे की सहायता के बिना सब अपने अपने कार्य्यों से च्युत हो जाते हैं। अथवा अपने श्रेय साधन से गिर जाते हैं। जिसको विनाश व मरण कहते हैं। इसलिये परमाणु से लेकर विराट् पुरुष तक जीवन मरण के चक्र मे घूमते हैं। केवल एक सूक्ष्म चैतन्य ब्रह्म ही शेष चैतन्य रह जाता है। ब्रह्म-चैतन्य के सिवा विश्वमय सारे प्रकृति दृश्य का नाश होता है और वास्तव मे नाश किसी का नहीं होता। चैतन्य की सत्ता से नश्वर-प्रकृति विकसित होकर बृहत् रूप से विश्वविराट् का निर्माण करती है और बृहत्-प्रकृति विश्वविराट् से सूक्ष्म शक्ति रहकर चैतन्य में लुप्त हो जाती है। जिस से फिर शक्ति सहित शक्तिमान चैतन्य ही शेष रह जाता है। तो नाश क्या हुआ?

आकाशादि पञ्च महाभूत और उन से भी परे क्रमशः— महाकर्म, महाअवधि, काल, महारचयित्री, महारजोगुण, महासत्त्वगुण, महाजागृति इन सब से परे जो है, उसको चैतन्य कहते है। महाजागृति से लेकर आकाशादि पञ्चमहाभूतों सहित समस्त जगत् को उत्पन्न करनेवाले उस चैतन्य को महाचैतन्य व ब्रह्म-चैतन्य कहते है। उससे परे कहने को न कोई शब्द है, और न कोई सीमा है। वह चैतन्य, सत्य, अनन्त और अखण्ड है। वह अपनी सत्ता से असत प्रकृति द्वारा विश्व का निर्माण करता है। जिससे विश्व के दृश्य में असत प्रकृति भी सत्य प्रतीत होती है। ऐसा वह परमतत्त्व शक्तिमान सत्य स्वरूप महाचैतन्य पूर्ण तत्त्व है।

अध्याय—४

महाप्रकृति का समस्त स्वरूप

महाप्रकृति प्रथम महाचैतन्य में शक्ति रूप से रहती है। वह चैतन्य की सत्ता से पोषित होकर अपने गुण में अंकुरित अथवा जाग्रत् होती है। जागृति में पोषित तमोगुण उत्पन्न होता है। उससे गति पैदा होती है। गति से क्रिया बनती है। क्रिया में परिवर्तन आता है। परिवर्तन से अवस्था बनती है। अवस्था से कर्म बनता है। कर्म से कार्य का आकार अथवा आकाश बनता है। आकार में स्पर्शता आती है। स्पर्शता से ताप बनता है। ताप से भाप बनती है। भाप से अणु बनता है। अणु के समूह से पिण्ड बनते हैं। इस तरह महाप्रकृति अपने सृजन स्वरूप में विश्व की उत्पत्ति करती है।

अणु से सूक्ष्म भाप, भाप से सूक्ष्म ताप, ताप से सूक्ष्म वायु, वायु से सूक्ष्म आकाश, आकाश से सूक्ष्म कर्म, कर्म से सूक्ष्म अवस्था, अवस्था से सूक्ष्म परिवर्तन, परिवर्तन से सूक्ष्म क्रिया, क्रिया से सूक्ष्म गति, गति से सूक्ष्म पोषित-तमोगुण, पोषित-तमोगुण से सूक्ष्म जागृति, जागृति से सूक्ष्म शक्ति और शक्ति से सूक्ष्म चैतन्य होता है। जो तत्व जितना सूक्ष्म होता है वह उतना ही महान्, विस्तरित और शक्तिमान होता है।

महाप्रकृति चौदह प्रकार की कलाओं से विश्व निर्माण में अपना समस्त स्वरूप उत्पन्न करती है।

उन्हीं चौदह कलाओं को चौदह लोक कहते हैं। महाचैतन्य मे प्रकृति प्रथम कला से मूल में शक्ति स्वरूप रहती है। दूसरी कला से शक्ति अंकुरित होकर जागृति रूपा बनती है। उसमें ज्ञान आता है। ज्ञान मे शक्ति विद्यमान रहती है। तीसरी कला से जागृति मे पोषित-तमोगुण उत्पन्न होकर गुण रूपा बनती है। उसमे शक्ति, और जागृति विद्यामान रहते है। चौथी कला से पोषित-तमोगुण में गति उत्पन्न हो कर गति रूपा बनती है। गति मे शक्ति, जागृति, गुण विद्यमान रहते है। पाँचवीं कला से गति मे कत्रित्व-शक्ति पैदा होकर करत्रिरूपा बनती है। उस में शक्ति, जागृति गुण, गति विद्यमान रहते हैं। छठी कला से क्रिया मे परिवर्तन आकर काल रूपा बनती है। उस मे शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, विद्यमान रहते है। सातवीं कला में परिवर्तन से अवस्था बनकर अवधी रूपा बनती है। उसमें शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, परिवर्तन, विद्यमान रहते हैं। आठवीं कला से अवस्था में कर्म बनकर कर्म रूपा बनती है। उस में शक्ति, जागृति, गुण, गति. क्रिया, काल, अवस्था, शासन विद्यमान रहते हैं। नवीं कला से कर्म मे कार्य का आकार बनने पर आ-काश रूपा बनती है। उसमें शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, काल, अवस्था, कर्म शब्द विद्यमान रहते हैं। दसवीं कला से

आकाश मे स्पर्शता आने से वायु रूपा बनती है। उसमें शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, काल, अवस्था कर्म, आकाश स्पर्शता विद्यमान रहते हैं। ग्यारहवीं कला से स्पर्श में ताप उत्पन्न होकर अग्नि रूपा बनती है। उसमे शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, काल, अवस्था कर्म, आकाश, स्पर्शता, रूप विद्यमान रहते हैं। बारहवीं कला से ताप मे भाप उत्पन्न होकर जल रूपा बनती है। उसमे शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, काल, अवस्था, कर्म, आकाश, स्पर्शता, ताप रस विद्यमान रहते हैं। तेरहवीं कला से भाप में अणु अथवा मृत्तिका बनकर पृथ्वी रूपा बनती है। उसमें शक्ति, जागृति, गुण, गति, क्रिया, काल, अवस्था, कर्म, आकाश, वायु, तेज, जल, गन्ध विद्यमान रहते हैं।

पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होने पर विश्वरूपा महाप्रकृति अपने सर्वाङ्ग स्वरूप मे उत्पन्न हो जाती है और विश्व की अवस्था तक उसी स्वरूप मे रहती है। किन्तु अपने स्वभाव से विनाश की ओर परिवर्तित होती रहती है।

विश्व की उत्पत्ति मे प्रकृति की प्रथम कला का स्वरूप सब कलाओं से उज्ज्वल अथवा देदीप्यमान होता है। दूसरी कला उससे कुछ न्यून देदीप्यमान होती है। इसी तरह तीसरी, चौथी, पाँचवी, छठी, सातवी, आठवीं नवी, दसवीं, ग्यारहवी बारहवीं, तेरहवी कलाये क्रमश कम-कम देदीप्यमान होती रहती हैं और चौदहवीं कला में उज्ज्वलता का बिलकुल अभाव हो जाता है। इसलिये उसमे उग्र-तमोगुणरूपी नाश गुण आ जाता है।

प्रकृति का विनाश स्वरूप—चौदहवीं कला मे प्रकृति पूर्ण अन्धकार रूपा होने से नाशनी स्वरूपा बन जाती है। उस रूप मे महाप्रकृति अपने नाशित तमोगुण से प्रत्येक कलाओं के प्रकाश को ढकते हुए प्रथम पृथ्वीतत्त्व को विच्छिन्न कर अणु में बदल देती है। अणु को भाप मे, इसी तरह भाप को विछिन्न कर ताप में, ताप को विच्छिन्न कर स्पर्श में, स्पर्श को विच्छिन्न कर आकार में, आकार को विच्छिन्न कर कर्म मे, कर्म को विच्छिन्न कर अवस्था मे, अवस्था को विच्छिन्न कर परिवर्तन में, परिवर्तन को विच्छिन्न कर क्रिया मे, क्रिया को विच्छिन्न कर गति में, गति को विच्छिन्न कर गुण मे, गुण को विच्छिन्न कर जागृति मे और जागृति को विच्छिन्न कर शक्ति मे बदलती है।

शक्ति चैतन्य मे अध्येय होकर चैतन्य की सत्ता से रक्षित हो जाती है। वहाँ नाशित तमोगुण नहीं पहुँच सकता अथवा नहीं रहता। जैसे अग्नि सब पदार्थों को भस्म करने पर भी वायु को भस्म नहीं कर सकता। वैसे ही शक्ति को नाशित तमोगुण भी नाश नही कर सकता। शक्ति तमोगुण से भी सूक्ष्म होती है। तमोगुण प्रकृति के जागृत स्वरूप मे आता है। इसलिये विनाश कार्य भी जाग्रत् तक हो सकता है।

इसी तरह महाप्रकृति प्रकाश पक्ष में विश्व का निर्माण करती है। यानी जब तक वह चैतन्य की प्रकाश-सत्ता से पोषित होती रहती है, तब तक विश्व बनता है और अन्धकार पक्ष में विश्व का विनाश करती है। वह प्रकाशित गति में

चैतन्य के प्रकाश से प्रकाशित होकर ज्ञानमय कार्य करती है अथवा विधिपूर्वक विश्व का निर्माण और सञ्चालन करती है और अन्धकार पक्ष में अपने महाअन्धकार से तामसी बन कर अज्ञानमय कार्य करती है अथवा विश्व का विध्वंस करती है। प्रकृति गति मय है इसलिए ज्ञान और अज्ञान की क्रिया करना उसका कार्य है। यह प्रकृति में स्वाभाविकता है। विश्व के निर्माण में प्रकृति की तीन अवस्थायें लक्ष्मी, सरस्वती और काली होती हैं।

अध्याय—५

महासत्त्वगुण

अनन्त चैतन्य की जिस सत्ता से शक्ति रूप महाप्रकृति चेतन और पोषित होती है, उसको महासत्त्वगुण कहते हैं। सत्त्वगुण में चेतनता प्रकाश और ज्ञान होता है।

इसलिये सत्त्वगुण की सामर्थ्य से अज्ञान प्रकृति ज्ञानमय हो कर प्रकाशित होती है।

महास्वत्त्वगुण अपने चेतन, ज्ञान और प्रकाश से विश्व का सृजन करनेवाली तामसी प्रकृति को चेतन, ज्ञानी और प्रकाशित करता है। इसलिये विश्व की उत्पत्ति के आरम्भ में प्रकृति चेतन और ज्ञानी बनकर सत्वगुण के समान दिव्य रूपा होती है। जैसे अग्नि के अन्दर के लोहा आदि द्रव्य अग्नि के सदृश्य होते हैं। प्रकृति के उस दिव्य स्वरूप को लक्ष्मी कहते है। वह सत्वगुण की आश्रित होती है।

सत्वगुण से उस दिव्यरूपा प्रकृति को विश्व के निर्माण करने का ज्ञान प्राप्त होता है।

जैसे प्राणियों को माता के गर्भ मे शुक्रि के सत्वगुण से चेतनता, ज्ञान और रक्षा प्राप्त होकर वे प्रथम् बाल अवस्था में प्रविष्ट होते हैं। और फिर उनकी तरुण और वृद्धावस्था होती है।

वैसे ही महाचेतन्य-परमात्मा के सत्वगुण मे विश्व-रूपा महाप्रकृति चेतन, ज्ञानी और रक्षित होकर विश्व के निर्माण मे प्रथम बालिका अथवा लक्ष्मीरूपा होती है और फिर तरुणी, वृद्धा अथवा सरस्वती और काली अवस्थाओं में प्रविष्ट होती है।

शुक्र मे आत्मिक सत्ता और रज मे प्राकृतिक शक्ति होती है। माता के गर्भ मे शुक्र की वही आत्मिक सत्ता रज की शक्ति को सत्वगुणी बनाती है। जिससे गर्भ के पिण्ड में चेतनता और ज्ञान प्राप्त होकर वह उत्पन्न होने के लिये रक्षित हो जाता है।

इसी तरह विश्व की रचयित्री महाजागृति महाचैतन्य अथवा परमात्मा के सत्वगुण से चेतन होकर रक्षित और पोषित होती है।

महाजागृति और शरीर जागृति अपने-अपने तमोगुण से महाप्रलय और शरीर मरण मे परमात्मा और आत्मा के चैतन्य मे लुप्त होती है। विश्व विराट् की महाजागृति परमात्मा मे लुप्त होने पर महाप्रलय और शरीर जागृति आत्म-चेतन्य मे लुप्त होने पर शरीर का मरण होता है। फिर पर-मात्मा और आत्मा के सत्वगुण से महाजागृति और शरीर जागृति लुप्तावस्था से जागृत होकर विश्व का और शरीर का निर्माण करते हैं।

सत्वगुण की सामर्थ से ही प्रकृति को रजोगुण में समाधा-

नता, क्रिया मे कला, काल में वर्तमान काल, अवधि में बाल अवस्था, कर्म में सुख, आकाश में धारणशक्ति, वायु में स्पर्शता, अग्नि (सूर्य, चन्द्रमा, तारों) मे प्रकाश, जल में रस और पृथ्वी में सुगन्ध होती है।

सत्त्वगुण ही से आत्मा मे सद्‌बुद्धि, बुद्धि मे ज्ञान, मन में प्रसन्नता, इच्छा में मंगल, कानों में सुनने की, त्वचा मे स्पर्श-ज्ञान की, आँखों में देखने की, रसना मे रसज्ञान की और घ्राण में गन्धज्ञान की शक्ति होती है। सत्त्वगुण ही से चन्द्रमा, वनस्पति और दूध मे सोमरस अथवा शरीरपोषक रस और पुष्पों मे सुगन्ध और सौन्दर्य होता है। हम पहिले कह चुके हैं जिस तरह प्राणियों का शरीर शुक्र के सत्त्वगुण से गर्भ में चेतन और जागृत होकर उसमे ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है वैसे ही महाप्रकृति महासत्त्वगुण से चेतन और जागृत होकर उसमें आनन्द, प्रसन्नता और सौंदर्य का अभ्युदय होता है। सत्त्वगुण को विष्णु भी कहते है।

अध्याय—६

महारजोगुण

महाचैतन्य के सत्त्वगुण में महाप्रकृति के पोषित तमोगुण के चढ़ने पर विश्व उत्पादक सत्ता उत्पन्न होती है। उसको महारजोगुण कहते हैं।

चैतन्य—सत्य, प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप, अखण्ड, अनादि, सर्वव्यापक, अनन्त, अविनाशी, कालातीत और प्रकृति का आधार है।

महाप्रकृति तमोगुणी होने से असत्य, अप्रकाशमय, अनित्य, जड़ और विनाशी है।

इन दोनों चैतन्य और प्रकृति के योग से अथवा सत्य-असत्य के संयोग से, प्रकाश-अप्रकाश के मेल से, नित्य-अनित्य के संयोग से अथवा चैतन्य और जड़ के योग से जो तीसरा मिश्रित स्वरूप उत्पन्न होता है, उसको महारजोगुण या रजोगुण कहते हैं। उसी से प्रकृति मे क्रिया उत्पन्न होकर विश्व की रचना होती है। महारजोगुण विश्व को पैदा करने-वाला बीज है।

जैसे बीज की सत्ता से वृक्ष पैदा होता है। और वृक्ष पैदा होने पर फिर बीज की सत्ता उसके सर्वाङ्ग में विद्यमान

रहती है। या बीज मे वृक्ष की सर्वाङ्ग सत्ता विद्यमान रहती है जिसको वह वृक्ष के रूप में विकसित करती है। ठीक वैसे ही महारजोगुण की सत्ता से विश्व उत्पन्न होता है और फिर विश्व उत्पन्न होने पर उसके सर्वाङ्ग मे महारजोगुण की सत्ता विद्यमान रहती है। जिससे विश्व के अन्तर्गत काल, कर्म, आकाश, वायु, अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, नक्षत्र, ग्रह, अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्थावर, जंगम, मनुष्यगण, देवगण, दानवगण आदि समस्त चराचर की उत्पत्ति उसी बीजरूप महारजोगुण से होती है। जो सत्य-असत्य के योग मे मिश्रित होता है।

इसलिये उससे उत्पन्न होनेवाला विश्व परमाणु से विश्व-विराट् पर्यन्त सत्य-असत्य के योग से उत्पन्न होने पर न सत्य है और न असत्य। क्योंकि सत्य अविनाशी चैतन्य है, और असत्य नश्वर प्रकृति है। शेष सारी सृष्टि जो सत्य-असत्य के योग से पैदा होती है, वह न सत्य है और न असत्य। रजोगुणयुक्त होने से रचनात्मक है। अथवा जो उत्पन्न होकर नाश और नाश होकर उत्पन्न होता है, ऐसा है।

रजोगुण जो विश्वविराट् और प्राणियों को उत्पन्न करने का हेतु है वह चैतन्य और प्रकृति के संयोग से बनता है। चैतन्य की सत्ता से विश्व और प्राणियों की उत्पत्ति होती है और प्रकृति के नाशित तमोगुण से विश्व और प्राणियों का

विनाश होता है। रजोगुण में विश्व का यह क्रम बराबर बना रहता है।

विश्व की बनावट में महाप्रकृति की चौदह प्रकार की कलाओं के साथ महारजोगुण चौदह प्रकार का होता है। प्रत्येक रजोगुण का स्वरूप, गुण और कार्य प्रकृति की प्रत्येक कला के स्वरूप, गुण और कार्यों की तरह होता है। वास्तविक रजोगुण ही में प्रकृति प्रत्येक कला से विभिन्न गतिमय और क्रियाशील होती है।

चौदह प्रकार के रजोगुण में से प्रत्येक के विश्व और प्राणियों की अवस्था के साथ तीन तीन भेद होते हैं। पहिला भेदः— जहाँ चैतन्य में प्रकृति का प्रथम पोपित तमोगुण होता है वह सत्त्वगुण के सदृश उज्ज्वल रजोगुण होता है। दूसरा भेदः— जहाँ चैतन्य में प्रकृति का तरुण पोपित तमोगुण हो जाता है वह गौर रजोगुण होता है। तीसरा भेदः—जहाँ चैतन्य में प्रकृति का अधिक तमोगुण बढ जाता है, वह लाल रजोगुण होता है।

प्रथम रजोगुण में प्रकाश से अन्धकार न्यून होता है। इसलिये उसका स्वरूप उज्ज्वल अथवा प्रकाशमय होता है। द्वतीय रजोगुण में प्रकाश-अन्धकार बराबर होते हैं इसलिये उसका स्वरूप गौरप्रकाशमय होता है। और तीसरे प्रकार के रजोगुण में प्रकाश से अन्धकार अधिक होता है। इसलिये उसका स्वरूप लाल प्रकाशमय होता है।

जो जितने छोटे जीव-जन्तु व ब्रह्माण्ड होते हैं, उनकी गति अपने रजोगुण की सत्ता के मुताबिक उतने ही न्यून काल में शांत होकर अपने आधार आत्मा-चैतन्य में लुप्त हो जाती हैं। उसको मरण व विनाश कहते है और फिर आत्मा-चैतन्य की सत्ता से उतने ही न्यू काल मे उनकी जागृतियाँ जागृत होकर रजोगुण अवस्था के पुनर्जन्म मे जन्मते हैं।

विश्व के अन्तर्गत सब जीव-जन्तु व ब्रह्माण्डों का जीवन, काल और विनाशकाल एक-सा नहीं होता। अपने अपने रजोगुण के मुताबिक हरेक की अवधि अलग अलग होती है।

विश्व मे सबसे बड़ा जीवनकाल और विनाशकाल इस महारजोगुण का है, जिसके जीवनकाल में सब अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है और विनाशकाल में सब अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों का विनाश होता है।

इसी तरह रजोगुण की सत्ता से विश्व पैदा होकर विनाश की ओर बढ़ता है।

विश्व की उत्पत्ति के साथ रजोगुण के अनन्त भेद होते हैं और सब भेद एक महारजोगुण के अंग होने से सब मिलकर एक विराट् रजोगुण हैं। विराट् रूप महारजोगुण के अन्तर्गत चौदह लोकों में मुख्य चौदह प्रकार के रजो गुण होते हैं। विश्व के अन्तर्गत अनन्त रजोगुणी जीव पैदा होते हैं।

रजोगुण में उत्पादन सत्ता और क्रियाशक्ति होती है। यह अपनी क्रियाशक्ति से विश्वकौशल का निर्माण करता है। रजोगुण अवस्था में तरुणावस्था, कर्म में शासन, आकाश में शब्द, वायु में बल, अग्नि में तेज, जल में द्रवितता पृथ्वी में उर्वरा, प्राणियों में मन, वनस्पतियों में बीज, समस्त विश्व में समाधान और महाप्रकृति में निर्माण स्वरूप है। रजोगुण में चेतनता, ज्ञान और निर्माण क्रिया होती है।

रजोगुण का दूसरा नाम ब्रह्मा है। रजोगुण से ज्योतियों में सृजनशक्ति बनी रहती है। अथवा जिस प्रकाश में सृजन-शक्तियाँ होती हैं, उसी को ब्रह्मा अथवा रजोगुण कहते हैं। वही, ज्योति जीवनशक्ति होती हैं।

अध्याय—७

महाप्रकृति का क्रिया स्वरूप

महारजोगुण में कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने पर प्रकृति में विश्व को बनानेवाली क्रियाशक्ति पैदा होती है। जिसके द्वारा महारजोगुण विश्व की रचना अथवा विश्व का निर्माण करता है। रजोगुण की सत्ता ही से प्रकृति मे निर्माणशक्ति पैदा होती है। प्रकृति के उस स्वरूप को रचयित्री, रचना कर्त्री या क्रिया कह सकते हैं। उसमें रजोगुण के स्वरूप से कुछ अधिक पोषित तमोगुण बढ़ जाता है। इसलिये प्रकृति के उस स्वरूप मे कुछ अधिक तमोगुण के बढ़ने से शुक्ल गौर प्रकाश में कुछ लालिमा आ जाती है। जिससे विश्व उत्पन्न करनेवाला अद्भुत सौन्दर्यमय प्रकाश उत्पन्न हो जाता है।

प्रकृति के उसी अद्भुत अति सौन्दर्यमय प्रकाश से विश्व में दिव्य सृष्टियां की उत्पत्ति होती है। उस प्रकाश का उदाहरण न सूर्य के, न चन्द्रमा के, न तारों के, न बिजली के और न अग्नि के प्रकाश से दिया जा सकता है। क्योंकि सूर्यादि अग्नियों का प्रकाश प्रकृति के उस स्वरूप के पश्चात् कितना ही अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने पर उत्पन्न होता है।

इसलिये विश्वरचयित्री के उस प्रकाशमय स्वरूप के साथ सूर्यादि अ ग्नियों के प्रकाश का उदाहरण कैसे दिया जा सकता है। उसको प्रकृति की युवती अवस्था का सौन्दर्यमय स्वरूप समझना चाहिये।

जैसे युवती स्त्रियों का सौन्दर्य उनकी सब अवस्थाओं से अधिक उज्ज्वल होता है और उन्हे उस अवस्था के सौंदर्य में गर्भाधान शक्ति प्राप्त होती है, वैसे ही रचयित्री स्वरूप के अद्भुत प्रकाश में विश्वनिर्माणशक्ति उत्पन्न हो जाती है।

महाप्रकृति अपनी रचयित्री अवस्था में ठीक इस तरह विश्व के विभिन्न तत्त्वों, पिण्डों और जीवों की उत्पत्ति करती है। जैसे स्त्रियाँ अपनी सारी तरुणावस्था में अनेक बच्चों को पैदा करती हैं।

महाप्रकृति रचयित्री अवस्था के उपरान्त फिर विश्व की नवीनता को पैदा करने की शक्ति नहीं रखती। जैसे स्त्रियाँ तरुणावस्था के उपरान्त अधेड़ और वृद्धावस्था मे बच्चे उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रख सकती हैं।

महाप्रकृति की रचयित्री अथवा तरुणावस्था ही में विश्व की एक से अनेक यानी सारी उत्पत्ति होती है। उसकी अधेड़ और वृद्धावस्था में विश्व की कोई नवीनता पैदा नहीं हो सकती; बल्कि उन अवस्थाओं में विश्व की बनावट में तमोगुण बढ़ता रहता है। जो विश्व की अन्तिम अवस्था के पश्चात् विश्व का विनाशक होता है।

महाप्रकृति का जो तमोगुण पहले चैतन्य की सत्ता से पोपित होते हुए विश्व के निर्माण का हेतु होता है, वही विश्व की अवस्था के अन्त में विश्व की चैतन्य सत्ता को आच्छादित करते हुए विश्व के विनाश का हेतु बन जाता है। इसलिये महाप्रकृति जो पहले चैतन्य की सत्ता से ज्ञानमय होकर विश्व-निर्माण की क्रिया करती है, वह पीछे नाशित तमोगुण से अज्ञान बनकर विश्व-विनाश की क्रिया बन जाती है।

महारजोगुण में जो चैतन्य सत्ता होती है, उसी की पोषित शक्ति से पैदा होनेवाली क्रिया विश्व का सृजन करनेवाली बनती है। प्रकृति के उस स्वरूप मे, चेतनता, ज्ञान, निर्माणकला और क्रियाशक्ति होती है। वह अपनी क्रिया से जैसे जैसे विश्व की उत्पत्ति, करती है। वैसे ही वैसे अपने गुण में बढ़ती रहती है। और जब तक अपने नाशित तमोगुण में प्रविष्ट नहीं होती तब तक विश्व को बनाकर अपने कर्म द्वारा नियमित रूप से उसका सञ्चालन करती रहती है।

विश्वरचयित्री अपनी युवती अवस्था के प्रथम प्रकाश से विश्व में दिव्य और आनन्दमय सृष्टियों की उत्पत्ति करती है। फिर वह जैसी-जैसी अपनी अवस्था मे बढ़ती है, वैसे ही वैसे तमोगुण बढ़ने से तामसी और दुःखमय सृष्टियों की उत्पत्ति करती है। महाप्रकृति की तरुणावस्था के पश्चात् सृष्टियों के दिव्य और आनन्दमय कार्य न्यून हो जाते हैं और तम और दुःखमय कार्य अधिक बढ़ जाते हैं।

विश्व में जो कुछ निर्माणकार्य हो रहे हैं या किये जा रहे हैं, सब प्रकृति की निर्माणक्रियाओं से हो रहे है। प्रकृति की वे ही निर्माणक्रियाये है, जिनके द्वारा काल परिवर्तन, कर्म शासन, और आकाश पिण्डों को धारण कर रहा है।

उन्हीं से वायु स्पर्श, धावन, शोषण और अग्नि-प्रकाश, तेज, दाहक करता है। उन्ही से जल में रस और पृथ्वी में स्थूलपन और गन्ध उत्पन्न होती है।

उन्हीं से आकाश में पिण्ड नियमित रूप से सञ्चालित हो रहे हैं; पृथ्वी मे मेघ वर्षते हैं, वीजों से वनस्पतियाँ उग रही है और पुष्पो से सुगन्ध विखरती हैं इत्यादि विश्व का समस्त कौशल उन्हीं से हो रहा है।

विश्वनिर्माण के साथ विश्वरचयित्री अनन्त क्रियारूप भेद उत्पन्न करती है, जिनसे विश्व की उत्पत्ति और विश्व का सञ्चालन हो रहा है।

जो जितने छोटे जीव-जन्तु व ब्रह्माण्ड होते है, उनकी गति अपने रजोगुण के मुताबिक उतने ही न्यून काल मे शान्त होकर अपने आधार आत्मा-चैतन्य में लुप्त हो जाती हैं। उसको मरण व विनाश कहते हैं। और फिर आत्मा-चैतन्य की सत्ता से उतने ही न्यून काल मे उनकी जागृतियाँ रजोगुण में क्रियाशील होने से पुनर्जन्म में पैदा होती हैं।

विश्व के अन्तर्गत सब ब्रह्माण्डों व जीवजन्तुओं की निर्माण और शान्त गतियाँ एक-सी नहीं होतीं। अपने-अपने रजोगुण

के मुताबिक हरेक की अवधि अलग-अलग होती है। वे सब विश्वरचयित्री के अन्तर्गत होती है। सबसे बड़ी निर्माणगति विश्वरचयित्री की होती है।

विश्वरचयित्री को विद्यारूप प्रकृति या सरस्वती भी कहते हैं। प्रकृति के उस स्वरूप में चेतनता और ज्ञान के साथ कला, क्रिया और विकासशक्ति होती है। उससे अति अद्भुत सौन्दर्यमय प्रकाश पैदा होता है, वह महाप्रकृति की युवती अवस्था का सौन्दर्यमय स्वरूप है।

अध्याय—८

महाकाल परिवर्तन

महाप्रकृति के क्रियास्वरूप मे कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने पर उसमें परिवर्तनशक्ति आ जाती है। जिससे प्रकृति अपनी क्रिया में परिवर्तित होते हुए विश्व का परिवर्तन करती रहती है। महाप्रकृति के उस परिवर्तन स्वरूप को महाकाल, काल या समय कहते हैं। अथवा विश्व की क्रिया करने में महाप्रकृति को जो जागृति से विनाश तक बराबर परिवर्तित करता रहता है, उसको महाकाल, काल या समय कहते हैं। उसी से विश्व उत्पत्ति से विनाश तक परिवर्तित होता रहता है।

यद्यपि काल का स्वरूप काला है, किन्तु विश्व की उत्पत्ति के प्रथम में महाचैतन्य के प्रकाश से वह देदीप्यमान उज्ज्वल होता है। जैसे दिन का समय सूर्य के प्रकाश से उज्ज्वल होता है या जैसे सत्त्वगुण से प्राणियों की बाल अवस्था अन्य अवस्थाओं से उज्ज्वल होती है। इस काल को हम पोषितकाल अथवा मंगलमय काल कह सकते हैं। क्योंकि इसके परिवर्तन में समस्त विश्व और प्राणियों का पोषण होता है।

महाप्रकृति के जागृत स्वरूप मे जो प्रथम पोषित तमोगुण

उत्पन्न होता है, उसी के समस्त स्वरूप को महाकाल समझना चाहिये।

विश्व की उत्पत्ति और विनाश के साथ उसके पोषित और नाशित दो भेद होते है। पोषितकाल के परिवर्तन से विश्व और प्राणी पोषित होकर बढ़ते हैं, इसका स्वरूप उज्ज्वल बताया गया है। और नाशितकाल के परिवर्तन में विश्व और प्राणियों का विनाश होकर नाशकारी तमोगुण का भी विनाश हो जाता है। रात्रि के समय की तरह इसका स्वरूप काला होता है।

पोषितकाल विश्व को बढ़ाता हुआ उसको विनाश की ओर परिवर्तित करता रहता है। विश्व की उत्पत्ति में महा-प्रकृति प्रथम पोषितकाल ही से जागृत होती है और उसी के परिवर्तन से जागृत रूप प्रकृति सत्त्वगुणी बनकर ज्ञानमय होती है। उसी के परिवर्तन से प्रकृति कालान्तर में रजोगुणी बनकर विश्व का निर्माण करनेवाली क्रिया बन जाती है और उसमें समाधान, संकल्प, विकल्पशक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उसी काल के परिवर्तन से कालान्तर में रजोगुणी प्रकृति, वर्तमान, भूत, भविष्य समय में परिवर्तित हो जाती है। कालान्तर के परिवर्तन से फिर समय रूप प्रकृति में इन्द्र अथवा शासनशक्ति पैदा हो जाती है। फिर उसी काल के परिवर्तन से कालान्तर मे प्रकृति की इन्द्रशक्ति से धारण अथवा आकाशशक्ति उत्पन्न हो जाती है। फिर उसी काल

के परिवर्तन से कालान्तर में आकाशरूप प्रकृति से स्पर्श-शक्ति अथवा वायु उत्पन्न हो जाता है। कालान्तर के परिवर्तन से फिर वायुरूप प्रकृति में तेज अथवा अग्निरूप प्रकृति उत्पन्न हो जाती है। फिर उसी काल के परिवर्तन से कालान्तर में अग्निरूप प्रकृति से रस अथवा जलरूप प्रकृति उत्पन्न हो जाती है। फिर कालान्तर के परिवर्तन से जलरूप प्रकृति में मृत्तिका अथवा पृथ्वीरूप प्रकृति उत्पन्न हो जाती है।

इसी तरह पोषितकाल के परिवर्तन से कालान्तर में अपने आप विश्व के समस्त तत्त्व, पिण्ड, अण्ड और ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हो जाती है और उनके साथ महाकाल के अनन्त भेद उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे महाकाल समस्त विश्व के तत्त्वों और अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों को उत्पत्ति की ओर से विनाश की ओर परिवर्तित करता रहता है।

समस्त विश्व के उत्पन्न होने के अन्तिम महाकाल नाशित रूप धारण करता है, उसका स्वरूप अन्धकारमय होता है। उसके परिवर्तन से समस्त विश्व के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, और तत्त्वों का नाश होने लगता है। और अन्तिम, विश्व के स्थान को घोर आन्धकार रूप से अच्छादित कर देता है। उस घोर अन्धकार का भी नाशितकाल का परिवर्तन क्रमशः कालान्तर में नाश कर नाश करनेवाली क्रिया में परिवर्तित कर देता है। और फिर काल का परिवर्तन उस नाशित क्रिया को भी क्रमशः कालान्तर में शक्ति में परिवर्तित कर देता है। शक्ति

चैतन्य की सत्ता से कालान्तर मे फिर जागृति में परिवर्तित होकर विश्व की उत्पत्ति करती है।

इसी तरह उत्पत्ति और विनाशक्रिया के समस्त परिवर्तन को महाकाल, काल कहते है। विश्व की उत्पत्ति और विनाश में महाकाल के परिवर्तन का त्रिकाल भेद होता है। इन भेदों का नाम अवस्थाओं में बाल, तरुण, वृद्ध और समय में वर्तमान, भूत, भविष्य कहते है। ये तीनो समस्त विश्व की उत्पत्ति और विनाश में परस्पर सम्बतिन्धित रहते है। विश्वगति के साथ इनके घुमाव का घेरा गोल चक्र की तरह होता है। जैसे त्रिकोणवाली वस्तु के घुमाव का घेरा गोल चक्रदार होता है।

विश्व उत्पत्ति के साथ जैसे उज्ज्वल काल के वर्तमान, भूत, भविष्य भेद होते हैं और प्राणियों की बाल, तरुण, वृद्दावस्था होती है, वैसे ही विश्वविनाशक काल के भी वर्तमान, भूत, भविष्य त्रिकाल भेद होते है, और पाणियों की मृत्यु होने पर, उनके भी बाल, तरुण, वृद्ध तीन भेद होते है।

जीवित प्राणियों के बुढ़ापे मे जैसे मृत्यु समीप आ जाती है, वैसे ही काल के परिवर्तन से कालान्त में मृतक प्रणियों के बुढ़ापे के समीप उत्पत्ति आ जाती है।

इसी तरह विश्वविनाश के बुढ़ापे काल में काल के परिनर्तव से कालान्तर में विश्व उत्पत्तिकाल समीप आ जाता है। समस्त विश्व की उत्पत्ति और विनाश परिवर्तन-रूप महाकाल के

त्रिकाल भेदों को जागृतकाल, रचनाकाल, विनाशकाल कहना चाहिए।

महाकाल का परिवर्तन बराबर बना रहता है। इसलिये काल-दर्शियों ने काल के इन तीन भेदो को वर्तमान, भूत, भविष्य के नाम से कहा है।

काल के परिवर्तन ही से सूर्य और पृथ्वी दैनिक और वार्षिक गति मे घूम रहे हैं। उसी से चन्द्रमा शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियों मे भ्रमण कर रहा है, इत्यादि समस्त विश्व का परिवर्तन महाकाल से हो रहा है।

पृथ्वी तल के मनुष्य सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की गति से जो समय होना मानते है, वह काल के ही परिवर्तन से होता है। अगर सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की गति का परिवर्तन महाकाल द्वारा न होता तो पृथ्वीतल मे मनुष्यों को कदापि समय का ज्ञान नही हो सकता। काल ही के परिवर्तन से पृथ्वी मे मनुष्यों को पल, चखा, घड़ी, पहर, दिन, रात्रि, तिथि, पक्ष, मास, वर्ष, शताब्दि, युग-युगान्तरों का बोध हो रहा है।

विश्व की उत्पत्ति और विनाश मे महाकाल के उज्ज्वल और कृष्ण दो भेद होते हैं, दोनों अपनी अपनी गति मे वर्तमान, भूत, भविष्य, त्रिकालमय परिवर्तनशील होते है। और विश्व को उत्पत्ति की ओर से विनाश की ओर और विनाश की ओर से उत्पत्ति की ओर परिवर्तित करते रहते हैं।

अध्याय—९

महाअवधि व अवस्थायें

महाकाल के परिवर्तन में कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने से उसका वेग इतना आहस्ता हो जाता है कि साधारण बुद्धियों को उसका ज्ञान तक नहीं हो सकता। इसी से समस्त विश्व और प्राणीमात्र का बराबर परिवर्तन होने पर भी साधारण ज्ञान से अस्थित विश्व की स्थिति प्रतीत होती है। उस अस्थित से स्थित प्रतीत करानेवाली शक्ति का नाम ही महाअवधि अथवा अवस्था है।

काल से विश्व का परिवर्तन हो रहा है और अवधि से विश्व की स्थिति प्रतीत होती है। वह काल के परिवर्तन-वेग को आच्छादित करके विश्व की स्थिति को प्रतीत करानेवाली शक्ति है।

जैसे सूर्य की अवधि तक सूर्य की स्थिति प्रतीत होती है, पृथ्वी की अवधि तक पृथ्वी प्रतीत होती है, चन्द्रमा की अवधि तक चन्द्रमा प्रतीत होता है।

यद्यपि महाकाल इनका बराबर परिवर्तन कर रहा है, लेकिन

वे अपनी अपनी अवधि तक प्रतीत हो रहे हैं। इसी तरह कोई भी प्राणी अपनी अवस्था तक प्रतीत होता है। जब कि महाकाल उसको बराबर परिवर्तित करता रहता है।

यह तो मैंने स्थूल सृष्टि का उदाहरण दिया। लेकिन इन्द्र, आकाश, वायु आदि जो सूक्ष्म हैं, उनकी भी अवधि होती है। क्योंकि वे भी अपनी अपनी अवधियों तक ही अपनी अपनी शक्तियों मे रह सकते हैं।

इसी तरह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों की अवधियाँ होती हैं। अपनी अवधि ही से प्रकृति प्रकृति के नाम से उच्चारित होती है।

इसी तरह समस्त विश्व के प्राणीमात्र तथा पिण्डों, ब्रह्माण्डों और तत्त्वों की अपनी अपनी अलग अलग अवधियाँ होती हैं। कार्यों के होने की और करने की भी अवधियाँ होती हैं। जिससे उन कार्यों की भी प्रतीति होती है।

यदि समस्त विश्व अपनी अवधि से स्थित न होता तो महाकाल के परिवर्तन से उसकी प्रतीति ही न हो सकती। विश्व की उत्पत्ति में अवधि कितनी आवश्यक शक्ति है। अवधि ही से विश्वनिर्माण की प्रतीति हमे होती है। हमें अपनी अवधि ही से अपने होने की प्रतीति हो रही है।

महाकाल के भूत, वर्तमान, भविष्य भेदों के साथ पदार्थों और प्राणीमात्र की अवधियों मे बाल, तरुण और वृद्ध, तीन भेद होते हैं। जिस मनुष्य को हम बाल अवस्था मे देखते हैं,

अगर उसी को फिर तरुणावस्था या बुढ़ापे में देखें तो नहीं देख सकते, क्योंकि काल के परिवर्तन से, वह बालक, तरुणाई या बुढ़ापे में परिवर्तित हो गया। किन्तु उस मनुष्य की किसी भी अवस्था में, साधारण ज्ञान से हम उसी बाल, तरुण और वृद्ध एक ही मनुष्य को देख रहे हैं।

इसी तरह समस्त सृष्टि मे हम जो कुछ देख रहे है, यद्यपि वे सब महाकाल के परिवर्तन से पल पल में परिवर्तित हो रहे हैं, लेकिन उनकी अवधि तक हमे सब जैसे के तैसे मालूम हो रहे हैं। यद्यपि हम और सारी दृश्यवान सृष्टि काल के परिवर्तन से पल पल में दूसरे हो रहे हैं, लेकिन अपनी अपनी अवधियों के कारण हम अपने को और दृश्यवान सृष्टि को साधारण ज्ञान से जैसे के तैसे देख रहे है। अवधि कितनी महान्‌शक्ति है, जो महाकाल के परिवर्तन से परिवर्तित होते हुए विश्व को प्रतीत करवा देती है। विश्व के अन्दर जितने प्राणी और दृश्यवान पदार्थ है, वे सब अपनी अपनी अवधियों तक अपने अपने स्वरूप में प्रतीत होते है। विश्व उत्पत्ति के साथ अवधि के अनन्त भेद होते हैं। उन्हीं के द्वारा प्राणी आदि समस्त विश्व की प्रतीति होती है। सब अवधियाँ एक महाअवधि के अंग है, जो विश्वविराट् की होती है।

अवधि के प्रधान दो भेद होते हैं, एक प्रकाशवान और दूसरा अन्धकारमय। प्रकाशवान अवधि मे विश्व की समस्त

दृश्यवान सृष्टि की स्थिति प्रतीत होती है। जैसे दिन मे सूर्य के प्रकाश से दृश्यवान पदार्थों की प्रतीति होती है।

अन्धकारमय अवधि मे विश्व के समस्त प्राणी और पदार्थ अन्धकार मे शान्त होकर अदृश्य हो जाते है। जैसे रात्रि के अन्धकार मे दृश्यवान पदार्थ अदृश्य होते है। इसी तरह प्रकाशवान अवधि मे प्राणी और समस्त विश्व दृश्यवान होकर प्रतीत होते है और अन्धकार अवधि मे सब लुप्त हो जाते हैं।

अध्याय—१०

महाकर्म—इन्द्र

विश्वस्थिति के परिवर्तन मे कुछ अधिक पोपित तमोगुण के बढ़ने से विश्व की शासनसत्ता उत्पन्न होती है। अथवा कालान्तर से विश्वस्थिति की सूक्ष्म अवस्था मे कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने पर विश्व की शासन शक्ति उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा विश्व के प्रत्येक कार्य नियमित रूप से संगठित और संचालित होते है, उस महाविधान स्वरूप का नाम जिसके अन्तर्गत विश्व के समस्त शासन होते हे। महाकर्म अथवा इन्द्र है।

जहाँ कर्ता जिस वस्तु के लिये नियत अवधि मे क्रिया करता है, वहाँ कर्म वन जाता है। कर्म मे कर्ता अवधि क्रिया और उस वस्तु का संगठन अथवा बन्धन होता है। इसलिये कर्म-तत्त्व अथवा इन्द्र में शासन के साथ बन्धनशक्ति पैदा होती है।

कर्म के सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते है। उसके रजोगुण से विश्व की शासन शक्ति बनती है। उसके द्वारा महाकर्म अथवा इन्द्र समस्त विश्व पर विभिन्न प्रकार से शासन करता है। उस-की महाशासन सत्ता से आकाश पिण्डों को धारण करता है। वायु आदान प्रदान करता है। अग्नि प्रकाश और दाहक करता

है। जल, भाप मेघ बारिश करता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे नियमित रूप से कार्य करते हैं। पृथ्वी नियमित रूप से दैनिक और वार्षिक गति मे घूमती है। वनस्पतियाँ नियमित रूप से फूलती और फलती है। उसी के शासन से प्रत्येक वनस्पति अपने अपने रस लेने मे समर्थ होती है। विश्व का समस्त शासन महाकर्म-इन्द्र के रजोगुण द्वारा होता है।

कर्म के रजोगुण में कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने से विश्व बन्धनशक्ति पैदा होती है। अर्थात् शासन मे कुछ अधिक तमोगुण बढ़ने पर बन्धनशक्ति उत्पन्न होती है। बन्धन कर्म की तामसता से उत्पन्न होता है। इसलिये महाकर्म के तमोगुण से समस्त जगत् बन्धन के आधीन रहता है। कर्म ही से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी परस्पर बन्धित है। सूर्य पिण्डों को आकर्पित किए हुए रहता है। उसी से पृथ्वी अपने समस्त निवासियो को आकर्षित किए रहती है। कर्मबन्धन ही से सूर्य उदय होकर अस्त और अस्त होकर उदय होता है। कर्म-बन्धन ही से दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन घूम रहा है। कर्मबन्धन ही से आकाश शब्द और वायु स्पर्श करता है। कर्मबन्धन ही से तेज अपनी सीमा से ज्यादा नही तप सकता। जल समुद्र, झील, नदी, मेघ, बारिश और भाप बन-कर घूमता है। कर्म ही से कुटुम्ब-कबीलों का सम्बन्ध, देशों का संगठन और राज्यों का प्रबन्ध होता है।

उसी से पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारे परस्पर एक दूसरे के

आकर्षणों से सम्बन्धित होते है। बीज और वृक्ष परस्पर सम्बन्धित होते है। पुरुष और प्रकृति परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। उसी से मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, वनस्पतियाँ, पृथ्वी आदि पिण्ड ब्रह्माण्ड इत्यादि समस्त विश्व बन्धन के आधीन रहता है।

बन्धन में अधिक तमोगुण बढ़ने से विश्व में अविधि कार्य होते है। अविधि कार्यों से विश्व में दुख उत्पन्न होता है।

कर्म के शासन मे कुछ तमोगुण बढ़ने से विश्व आकर्षणों से बन्धित होता है। बन्धनशक्ति में कुछ तमोगुण बढ़ने से विश्व में अविधि कार्य होते है और अविधि कार्यों से विश्व में दुःख उत्पन्न होता है।

महाकर्म अथवा इन्द्र के सत्त्वगुणी शासन से विश्व में आनन्द व सुख पैदा होता है। विश्व मे जितनी भी सुखमय सृष्टियाँ हैं सब इन्द्र के सत्त्वगुणी शासन से ही सुखी होती है। सुखों के स्थान को स्वर्ग कहते हैं। इसलिये सत्त्वगुणी कर्म से विश्व में लौकिक और पारलौकिक स्वर्ग की सृष्टियाँ बनती हैं।

कर्म के तमोगुणी शासन से विश्व मे दुख और भय पैदा होते है। विश्व मे जितनी भी दुःखमय सृष्टियाँ होती है सब तमोगुणी कर्म से ही बनती हैं। लौकिक और पारलौकिक दुःखों के स्थान को नरक कहते है। इसलिये तमोगुणी कर्म से विश्व में नरक की सृष्टियाँ पैदा होती है।

सत्त्वगुणी कर्मों से मनुष्यादि प्राणी लौकिक और पार-

लौकिक सुखों के स्थान स्वर्ग को प्राप्त करते है और तमोगुणी कर्मों से दुःखों के स्थान नरक को।

प्राणीमात्र अपने अपने सत्त्वगुणी और तमोगुणी कर्मों के आधीन सुख दुःख को भोगते है। मनुष्य आदि प्राणी कर्म करने के लिये स्वतन्त्र और उनके फल भोगने के लिये कर्म के शासन से परतन्त्र होते हैं। इसलिये कर्म ही सुख दुःख देने-वाला शासक अथवा राजा है।

जिस तरह प्राणियों के पञ्चभौतिक शरीर को सुख दुख देने-वाला शासक उनके द्वारा होनेवाला कर्म है। उसी तरह आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी पञ्च महाभूतों का सञ्चालन करनेवाला शासक अथवा राजा महाकर्म—इन्द्र है। उसके शासन से सब विधिपूर्वक सञ्चालित और अपने अपने कार्यों में में प्रवृत्त होते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी इनको देव कहते हैं। देव माने देनेवाला। महाकर्म द्वारा इन्हीं से मनुष्यादि प्राणियों को सुख दुःख प्राप्त होते हैं।

महाकर्म इन्द्र आकाश से सूक्ष्म और आकाश से प्रथम उत्पन्न होता है। मनुष्यादि प्राणी शारीरिक पञ्चतत्त्व अथवा शारीरिक आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तत्त्व द्वारा कर्म करते हैं। जैसे शारीरिक आकाश तत्त्व के सत्त्वगुण से कर्ण बनते हैं और उनसे सुनने का कार्य होता है। शारीरिक वायुतत्त्व के सत्त्वगुण से त्वचा बनती है और उससे शीतोष्णज्ञान का कार्य होता है। शारी-रिक अग्नितत्त्व के सत्त्वगुण से नेत्र बनते हैं और उनसे देखने

का कार्य होता है। शारीरिक जलतत्त्व के सत्वगुण से रसना बनती है और उससे रसों का ज्ञान होता है। शारीरीक पृथ्वी-तत्त्व के सत्त्वगुण से घ्राण बनता है और उससे गन्ध का ज्ञान होता है।

शारीरिक आकाशतत्त्व के रजोगुण से वाणी उत्पन्न होती है और उससे बोलने का कार्य होता है। शारीरिक वायु तत्त्व के रजोगुण से हस्त पाद उत्पन्न होते है और उनसे लेने देने और चलने फिरने के कार्य होते है। शारीरिक अग्नितत्त्व के रजोगुण से मुँह और जठराग्नि उत्पन्न होते है। मूह से खाने का और जठराग्नि से खाद्य पदार्थों को पाचन करने का कार्य होता है। शारीरिक जलतत्त्व के रजोगुण से लिङ्ग और रुधिर बनता है। लिङ्ग से मूत्र उतरने और मैथुन का कार्य होता है और रुधिर शरीर में घूमने का कार्य करता है। शारीरिक लिङ्ग पृथ्वीतत्त्व के रजो गुण से गुदा उत्पन्न होता है और उससे मल उतरने का कार्य होता है।

शारीरिक आकाशतत्त्व के तमोगुण से शोक उत्पन्न होता है और उससे शोकित कार्य होते हैं। शारीरिक वायुतत्त्व के तमो-गुण से भय पैदा होता है और उससे भयभीत कार्य होते हैं। शारीरिक अग्नितत्त्व के तमोगुण से क्रोध उत्पन्न होता है और उससे क्रोधित कार्य होते हैं। शारीरिक जलतत्त्व के तमोगुण से आलस्य पैदा होता है और उससे आलसी कार्य होते हैं। शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के तमोगुण से निद्रा उत्पन्न होती है और

उससे सोने का कार्य होता है। यानी शारीरिक पञ्चतत्त्वों के कर्म ही से मनुष्यादि प्राणी शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य करते हैं।

जिस तरह प्राणी शारीरिक पञ्चतत्त्वों के कर्म द्वारा शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य करने मे समर्थ होते हैं। उसी तरह विश्व में महाकर्म—इन्द्र द्वारा पञ्चमहाभूत अपने अपने कार्य में समर्थ होते हैं। विश्व का समस्त शासन और सुख दु:ख महाकर्म—इन्द्र के आधीन है। इन्द्र आकाश से सूक्ष्म और आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी आदि समस्त विश्व का शासक अथवा राजा है।

कर्म के सत्त्वगुण से विश्व मे विभिन्न सुख की सृष्टियाँ व समस्त सुख पैदा होते हैं। कर्म के तमोगुण से विश्व मे विभिन्न दुख की सृष्टियाँ व अनेक दुख पैदा होते हैं और कर्म रजोगुण से समस्त विश्व पर शासन करता है। जिसके द्वारा नियमित रूप से विधिपूर्वक विश्व के समस्त कार्य होते है।

अध्याय—११

महाआकाश

इन्द्र के रजोगुण मे कुछ अधिक तमोगुण के बढ़ने पर धारणाशक्ति का आकार उत्पन्न होता है, वह अनन्त विस्तृत होकर सर्वत्र फैला हुआ है। उसको महाआकाश व आकाश कहते हैं।

आकाश के सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते हैं। उसके सत्त्वगुण से धारणाशक्ति उत्पन्न होती है। रजोगुण से शब्द और तमोगुण से विस्तार।

महाआकाश की धारणाशक्ति वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह सबको धारण करती है। जिस तरह पृथ्वी अपनी समस्त वस्तुओं को अपने भिन्न भिन्न स्थानों मे धारण किए रहती है, उसी तरह महाआकाश भी सब नक्षत्र, ग्रह, पिण्ड ब्रह्माण्डो को अपने भिन्न भिन्न स्थानों मे धारण कर रहा है। हमको धारण करनेवाली पृथ्वी है और पृथ्वी को धारण करनेवाला आकाश है इसलिये आकाश ही सबको धारण कर रहा है। पृथ्वी की धारणाशक्ति आकाश ही से प्राप्त होती है। आकाश ही सूक्ष्म और स्थूल सृष्टियों को धारण कर रहा है।

वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर आदि विश्व के तत्त्व और पिण्डों को उनके

नियत स्थानों मे धारित करनेवाली आकाश मे प्रत्येक की अलग अलग धारणाशक्तियाँ हैं। सब मिलकर अनन्त हैं और सब महाआकाश मे शारीरिक सूक्ष्म नाड़ियों के जाल की तरह फैली हुई है।

महाआकाश की तरह प्राणियो के शरीर मे भी प्रत्येक अवयव को धारण करनेवाली शारीरिक आकाशतत्त्व से उत्पन्न होनेवाली एक एक सूक्ष्म धारणाशक्तियाँ होती हैं, जिनको हम सूक्ष्म नाड़ियाँ भी कह सकते है। शारीरिक वायु शरीर के अन्दर उन्हीं मे सञ्चार करता हुआ शरीर के प्रत्येक अवयव मे पहुँचता है। वायु जिस तरह आकाश मे बहकर सबको स्पर्श करता है। उसी तरह शारीरिक वायु शरीर के अन्दर उन धारणाशक्तियो मे बहता हुआ शरीर के प्रत्येक अवयव मे पहुँचता है।

समस्त शरीर के विभिन्न अङ्ग उन धारणाशक्तियों द्वारा अपने अपने स्थानों मे स्थित हैं। जैसे महाआकाश मे तत्त्व और समस्त पिण्ड अपने अपने कार्य करते हुए भी आकाश की धारणाशक्तियों द्वारा अपने अपने स्थानों मे धारित है।

आकाश की धारणाशक्ति मे जागृति, कर्ता, क्रिया, कर्म, अवधि और आधार का संयोग होता है और जहाँ इनका संयोग होता है वहाँ शब्द उत्पन्न हो जाता है। कर्ता, क्रिया, कर्म रजोगुण मे आते है। इसलिए शब्द आकाश के रजोगुण से उत्पन्न होता है। शब्द उत्पन्न होते ही आकाश में फैलता है और फैलते ही वह आकाश की धारणाशक्ति मे लय हो जाता है।

विश्व मे जितने शब्द और ध्वनियाँ होती है सब आकाश के रजोगुण से उत्पन्न होते है। जहाँ शब्द होता है वहाँ आकाशतत्त्व रहता है। वास्तविक शब्द और ध्वनि होनेवाली सृष्टियो मे आकाश सर्वत्र विद्यमान रहता है। मनुष्य आदि प्राणियों के लिये शब्द के दो भेद होते हैं सार्थक और निरर्थक। जिन शब्दों का कुछ अर्थ मालूम नहीं हो सकता वे निरर्थक कहे जाते है। और जिनका अर्थ मालूम होता है उनको सार्थक शब्द कहा गया है। पाणीमात्र की ध्वनियाँ और सब प्रकार के शब्द आकाश के रजोगुण से उत्पन्न होते है। प्राणियों के शरीर मे जो आकाशतत्त्व होता है उसके सत्त्वगुण से "शब्द को धारण करनेवाली" स्मरण-शक्ति, हृदय, और कान पैदा होते हैं। और रजोगुण से ध्वनि पैदा होती है। इसलिये सब प्रकार की ध्वनियों और शब्दों का ज्ञान प्राणियों को कानों के द्वारा होता है और कानों में पहुँचे हुए शब्दों के परिणाम को हृदय की स्मरण शक्ति धारण करती है, जिसको याद करना कहते है।

आकाश के तमोगुण से विस्तार होता है। आकाश के जितने दूर विस्तार मे हम दृष्टि डालेंगे, उतना ही अधिक अन्धकार दिखाई देगा। आकाश में हम जितना नीलापन देखते हैं वह सब अन्धकार है। वही अन्धकार रात्रि में पृथ्वी को आच्छादित करता है। अन्धकार ही तमोगुण है। प्रकृति के विस्तार के साथ तमोगुण भी विस्तृत होता है। आकाश के

स्वरूप में प्रकृति अपने विस्तार में पूर्ण विस्तृत हो जाती है। इसलिये तमोगुण से आकाश अपने अनन्त विस्तार में विस्तृत होता है। लेकिन अन्धकार से रहित धारणारूप आकाश चैतन्य के सदृश अनन्त और निर्मल है। महाआकाश, अनन्त चैतन्य और अनन्त प्रकृति के सम्मिश्रण से विश्व का आकार बनता है।

महाआकाश के अन्तर्गत अनन्त छोटे छोटे आकाश होते हैं। जहाँ शब्द, वायु, तेज, जल, पृथ्वी के सूक्ष्म और स्थूल भाग रहेंगे, वहाँ अवश्य आकाश समझना चाहिए। घटाकाश घट के अन्दर भी आकाश होता है। इसी तरह मनुष्य, गाय, भैंस, हाथी, चिउँटी, हंस, कौवा, गरुड़, मशक, दंश और वेल-वृक्ष में भी भिन्न-भिन्न तरह के शारीरिक आकाश होते हैं। जिसमें उनकी त्वचा विस्तारित होती है उसको शरीर आकाश कहते हैं।

महाआकाश में जिस तरह शब्द, वायु, तेज, जल, पृथ्वी अपने अपने विस्तार मे विस्तृत होते है, उसी तरह शारीरिक आकाश में शारीरिक तत्त्व त्वचा के स्वरूप में विस्तृत होते हैं।

महाआकाश में जिस तरह शब्द, वायु, तेज, जल, पृथ्वी और पिण्ड स्थित है, उसी तरह शरीर आकाश मे शारीरिक तत्त्व स्थित रहते है।

प्राणियों में शारीरिक आकाशतत्त्व के सत्त्वगुण से स्मरण-शक्ति, हृदय और कान पैदा होते हैं। रजोगुण से वाणी और

तमोगुण से शोक और शरीर का अन्तिम विस्तार होता है। आकाश में प्रकाश, शक्ति, जागृति, सत्त्वगुण, रजोगुण, रचना परिवर्तन, अवधि, कर्म, धारणा, शब्द अन्धकार विद्यमान रहते है। आकाश अन्धकार से ढका हुआ रहता है, जैसे बादलों से सूर्य का प्रकाश ढक जाता है। महाचैतन्य के अनन्त प्रकाश में महाप्रकृति विश्व की आकृति अथवा महाआकाश रूप में अधेय होकर रहती है इसलिये चैतन्य के प्रकाश और हमारे मध्यस्थ आकाश में प्रकृति अन्धकार धारण किए हुए रहती है। जैसे रात्रि को सूर्य और हमारे मध्यस्थ पृथ्वी का अन्धकार होता है, उसी तरह आकाश का अन्धकार हमारी ओर रहता है जिसको हम आकाश में देखते हैं।

दिन में वही अन्धकार सूर्य के प्रकाश से नीला मालूम होता है। आकाश में जहाँ सूर्यादि प्रकाशवान पिण्डों का अभाव होता है, वहाँ उस अन्धकार का भाव बना रहता है। अन्धकार नीला नहीं, किन्तु काला होता है। उसी अन्धकार का कुछ हिस्सा रात्रि को पृथ्वी की छाया बनकर पृथ्वी को आच्छादित करता है, उसी को हम रात्रि कहते हैं। लेकिन दिन के होते ही वह अन्धकार सूर्य के प्रकाश में लय हो जाता है। अन्धकार में यह स्वाभाविकता होती है कि वह प्रकाश के होते ही अन्धकारपन छोड़कर प्रकाश के सदृश हो जाता है। इसलिये प्रकाश के होते हुए अन्धकार नहीं रह सकता। प्रकाश शक्तिरूप प्रकृति का आधार है और अन्धकार का

आधार प्रकृति है। इसलिये विनाप्रकृति का अन्धकार प्रकाश में नहीं टिक सकता। जैसे प्राकृतिक पृथ्वी के रात्रिवाले हिस्से मे अन्धकार टिकता है और उस हिस्से की तरफ जब दिन मे सूर्य का प्रकाश हो जाता है, तब अन्धकार लुप्त हो जाता है। इसी तरह अन्धकार छोटे विस्तार में हो चाहे बड़े विस्तार में वह प्रकृति के अन्दर अथवा प्रकृति मे रहता है और प्रकाश के होते ही लुप्त हो जाता है। जैसे आकाश मे रहनेवाली पृथ्वी के रात्रि और दिन के क्रम मे होता है।

सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी आकाश मे है। पृथ्वी दैनिक और वार्षिक चालो से आकाश मे घूम रही है। सूर्य, चन्द्रमा आकाश मे तप रहे है। वायु आकाश मे बहता है। मेघ आकाश मे बनते है। तारे आकाश मे चमकते है। वृक्ष जमीन मे उगकर आकाश में फैलते हैं। चिड़ियाँ आकाश में उड़ती है। मनुष्य, गाय, भैंस, हाथी, घोड़े आदि घूमते फिरते, उठते बैठते उनके शरीर का अधिक हिस्सा आकाश मे रहता है। चलते हुए हमारे केवल पैर पृथ्वी पर रहते है और बाकी सारा शरीर आकाश मे रहता है। इसी तरह उठते बैठते भी हमारा तनिक हिस्सा पृथ्वी पर रहता है बाकी सारा शरीर आकाश मे रहता है।

पञ्चतत्त्वों मे आकाश सबसे महान् तत्त्व है। आकाश के सत्त्वगुण से धारणाशक्ति, रजोगुण से शब्द और तमोगुण से विस्तार होता है।

अध्याय—१२

महावायु

आकाश की धारणा शक्ति मे कुछ पोषित तमोगुण के बढ़ने पर स्पर्शता आ जाती है, अथवा हिलने की शक्ति उत्पन्न होती है। वह हिलने से समस्त आकाश में फैल जाती है और उसमें तीव्र गति आ जाती है। उसको वायु कहते हैं। वायु अपने तीव्र वेग से आकाश मे फैलकर सर्वत्र बहने लगा और आकाश में सबको स्पर्श करने लगा। स्पर्श और बहाव से वह सबको सूक्ष्मता से शोषकर प्रदान का कार्य करने लगा।

स्पर्श माने हिलकर व बहकर दूसरे को छूना और प्रदान माने देना, फेंकना, बिखेरना।

आकाश मे वायु की गति सर्वत्र एक सी नही होती। कहीं तीव्र, कहीं सूक्ष्म, कहीं गाढ़ी, कहीं हल्की होती है। प्राकृतिक विश्व को जहाँ उसकी जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ उसकी गति और विधि उसी प्रकार से होती है। वायु बल का निधि है। वह अपनी तीव्र गति के कारण सबसे बलवान है। वायु अपने बल के वेग से सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा, तारे आदि आकाश के पिंडों को वेगवान बना रहा है। इसलिये उस वायु को हम महावायु कह सकते है। जो अपने वेग से महाआकाश के समस्त पिण्डों को घुमा रहा है।

वायु अरूपा है। उसमे शब्द स्पर्श है रूप नहीं, इसलिये वह नेत्रों से दिखाई नहीं देता। वायु आकाश मे अनन्त सीमा तक फैला हुआ है। जिससे वह आकाश मे शब्द, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र, ग्रह, अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, वनस्पती जीवजन्तु आदि सबको स्पर्श करता है और अपने बल से सब पदार्थों के सूक्ष्म अंशों को सूक्ष्मता से शोषकर आकाश मे फैलाता है। जैसे शब्द अपने स्थान में उत्पन्न होते ही वायु उसको स्पर्श कर शीघ्र अपने वेग से इधर उधर आकाश मे फैला देता है। इसलिये दूर रहने पर भी हमें उसका ज्ञान हो जाता है। बादलों की गरजना हमसे बहुत दूर आकाश में होती है, वायु उनको वहाॅ से फैलाता हुआ हमारे कानों तक पहॅुचाता है। इसी तरह सूर्य तारों से प्रकाश, तेज और चन्द्रमा से प्रकाश और शीत शोषकर आकाश में फैलाते हुए हमारी पृथ्वी तक पहॅुचाता है। जल से भाप शोषकर आकाश में फैलाता है जिससे बादल बनते हैं। और फिर बादलों से वारिश को पृथ्वी पर बिखेरता है।

यद्यपि शब्द, प्रकाश, तेज और शीत का फैलाव आकाश के विस्तार में होता है, तथापि आकाश भी उनका फैलाव वायु की सहायता के विना नहीं कर सकता।

जल के अणुओं की जुदाई, जिससे उसकी द्रवित शक्ति बनती है। नदियों का बहाव समुद्र में ज्वारभाटे, समुद्र से भाप को उड़ाकर आकाश में फैलाना, मेघों के समूह को

बनाना, मेघों को उड़ाना, घुमाना, मेघों से वर्षा को पृथ्वी पर बिखेरना, जल को सुखाना, और मेघों को विच्छिन्न करना ये सब कार्य वायु तत्त्व से होते है।

वायु के कारण सूर्य अपने स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है। वायु के कारण सूर्य का प्रकाश व तेज आकाश और पृथ्वी आदि पिण्डों में फैल रहा है। वायु सूर्य को स्पर्शकर उसके प्रकाश और तेज को शोषकर आकाश में फैलाकर पृथ्वी आदि पिण्डों में पहुँचाता है।

वायु के कारण पृथ्वी दैनिक और वार्षिक गति में घूम रही है। पृथ्वी में शीतोष्ण नमी और गन्ध उसकी आवश्यकता से अधिक होने पर वायु ही उनको उड़ाकर आकाश में ले जाता है।

आकाश मे मेघों के शब्द, पिण्डों के टूटने फूटने के शब्द, वृक्षों के टूटने हिलने व काटने के शब्द, जल के बहने, बरसने के शब्द, मनुष्यों के बोलने के शब्द, जानवरों के शब्द, पिण्डज, अण्डज, स्वेदजों और उद्भिजों के शब्द, यानी सब प्रकार के सार्थक और निरर्थक शब्द, सबको वायु उनके स्थानों से स्पर्श कर आकाश में फैलाता है और आकाश से हमारे कानों में पहुँचाता है।

वायुमण्डल में जब शब्द, प्रकाश और तेज अपनी सीमा से अधिक फैलकर विच्छिन्न हो जाते हैं, तब उनका बोध नहीं हो सकता।

समस्त विश्व में स्पर्श, सुखाना, फैलाना, आदान और प्रदान की क्रियाएँ वायु तत्त्व से हो रही है।

वायु आकाश से शब्द को शोषकर हमारे कानों मे पहुँचाता है, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारों और विजली से प्रकाश खींचकर हमारे नेत्रों मे पहुँचाता है। अग्नि सूर्य से तेज और चन्द्रमा से शीत खीचकर हमारी त्वचा तक पहुँचाता है, पुष्पों से गन्ध खींचकर हमारी नासिका में पहुंचाता है।

पृथ्वी का जल शोषण, वृक्षों का पृथ्वी से रस शोषण और उस रस को वृक्षों के जड़, तना, टहनियाँ, पत्ते, पुष्प, फल और बीजों में पहुँचना वायुतत्त्व से होता है। उसी से वृक्षों की जड़ें पृथ्वी के अन्दर फैलती हैं। तना आकाश में फैलता है। उसी से पत्ते अपनी गिजा शोषते है, उसी से पत्ते हिलते हैं, उड़ते हैं। वही पुष्पों से गन्ध उड़ाता है। उसी से मनुष्य आदि प्राणी साँस लेते है, अन्न-जल निगलते है। उसी से मल मूत्र उतरता है। उसी से त्वचा को स्पर्श ज्ञान होता है। उसी से शरीर के अन्दर रस रुधिर का बहाव होता है। हाथों से लेना देना, पाँव से चलना फिरना और दौड़ना ये कार्य भी वायु तत्त्व से होते है। प्राणियों का शारीरिक बल भी वायु तत्त्व से बनता है।

शब्द के स्थान से उसको कान मे पहुँचाना, आँख से दृष्टि को सर्वत्र फैलाना, गन्ध के स्थान से गन्ध को नासिका मे पहुँचाना, कण्ठ से वाणी को फैलाना, त्वचा को स्पर्श मालूम होना ये कार्य वायु तत्त्व से होते हैं।

प्राणियों के शरीर मे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायु, वायुतत्त्व से उत्पन्न होते है।

प्राणवायु ऊपर को चलने वाला सांस है। वह फेफड़े से नासिका के अग्र भाग तक कार्य करता है।

अपान वायु नीचे को चलने वाला साँस है। वह नासिका से गुदा तक कार्य करता है।

व्यान वायु सारे शरीर मे विचरने का कार्य करता है और समस्त शरीर के अवयवों मे रस रुधिर को पहुँचाता है।

उदानवायु कंठ मे रहता है, उससे अन्न-जल निगला जाता है।

समान वायु अन्न-जल को पाचन करता है। जिससे रस रुधिर और मलमूत्र पृथक्-पृथक् होते है और मलमूत्र बाहर उतरता है।

बुढ़ापे मे त्वचा का ढलना, लूलापन होना, शरीर का बल हीन होना, हस्त-पाद क्रियाओं का ढीला पड़ना, चिन्ता और भय वायु तत्त्व से होते है।

वायु तत्त्व से ही वृक्षों की जड़ें पृथ्वी के अन्दर फैलती हैं। उसी से जड़ें रस शोषती है। वायुतत्त्व ही से वृक्ष आकाश में फैलते हैं। उसी से पत्तियाँ रोशनी और रस शोषती है। वायु तत्त्व ही से वृक्ष साँस लेते हैं और फेंकते है। वायु से ही वृक्षों को शीतोष्ण के स्पर्श का ज्ञान होता है। वायु से ही वृक्षों को बल प्राप्त होता है।

वायु के सत, रज, तम त्रिगुण भेद होते है। उसके सत्त्वगुण

से स्पर्श, रजोगुण से वहना व फैलना और तमोगुण से शोषण व सुखाने का कार्य होता है।

सत, रज, तम इनमे से प्रत्येक के पाँच-पाँच भेद होते हैं।

सत्वगुण के पाँच भेदः—हिलना, छूना, छेड़ना, मिलना और मिलाना है।

रजोगुण के पाँच भेदः—वहना, फैलना, घूमना, चलना और धावन है।

तमोगुण के पाँच भेदः—सुखाना, शोषण, लेना, खींचना और आकर्षित है।

—

अध्याय—१३

महाअग्नि

वायु मे कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने पर तेज उत्पन्न होता है, तेजित वायु की तरंगों का परस्पर संघर्षण होने से अग्नि उत्पन्न होती है। उसमे रूप आता है।

जैसे गर्मियों के दिनों में तेजित वायु की तरंगों के संघर्षण से विजली उत्पन्न होकर उसमे रूप आता है। जिससे हम विजली को देख सकते हैं। ठीक उसी तरह वायु के स्पर्श में कुछ अधिक पोषित तमोगुण के बढ़ने पर वायु मे तेज पैदा होता है। तेजितवायु की तरंगों के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न होता है और उसमे रूप आता है।

विश्व की उत्पत्ति मे अग्नि तेरह स्वरूपों में परिवर्तित होते हुए समस्त विश्व का कौशल बनाता है। और चौदहवें स्वरूप से दाहक शक्ति बनकर विश्व का विनाश करता है।

विश्व की उत्पत्ति और विनाश मे अग्नि के मुख्य दो भेद होते हैं पोषिक और नाशक।

अग्नि ही समस्त विश्व का पोषण करता है, और अग्नि ही समस्त विश्व का नाश करता है।

महाचैतन्य में अग्नि परम प्रकाश रूप से रहता है। महा-

चैतन्य के परम प्रकाशक से शक्ति रूप प्रकृति चेतन होकर प्रथम विश्व की बुद्धि बनती है। उसमें अग्नि का जो प्रकाश आता है उसको ज्ञान कहते है।

अग्नि सत्त्वगुण में चेतन रूप से, सृजनशक्ति अथवा महा-जागृति मे वह ज्ञान रूप से, रजोगुण मे उत्पादक अथवा ब्रह्मरूप से, रचयित्री मे कला अथवा आभा रूप से, काल मे परिवर्तन रूप से, अवधि मे स्थिति रूप से, इन्द्र मे शासन रूप से, आकाश मे धारणा रूप से, वायु मे धावन रूप से, नेत्रों से जो अग्नि दिखाई देता है उस मे रूप भेद से, जल मे द्रवित रूप से, पृथ्वी मे उर्वरा रूप से और विनाश मे दाहक रूप से रहता है।

इस प्रकार विश्व की उत्पत्ति और विनाश मे अग्नि के चौदह स्वरूप होते हैं। तेरह तरह के अग्नियों की ज्योतियों से विश्व की उत्पत्ति और चौदहवीं अग्नि से विश्व का नाश होता है।

तेरह प्रकार की ज्योतियों से विश्व का पोषण और रक्षण होता है और चौदहवीं दाहक शक्ति से विश्व का दाहक व विनाश होता है।

इस अध्याय मे उस अग्नि का वर्णन किया जाता है, जिस में रूप आता है। अग्नि के सत, रज, तम त्रिगुण भेद होते है। उसके सत्वगुण से प्रकाश, रजोगुण से तेज और तमोगुण से दाहक शक्ति पैदा होती है।

सूर्य चन्द्रमा मे प्रकाश एक सा होता है। लेकिन सूर्य के प्रकाश में तेज और चन्द्रमा के प्रकाश में शीत होता है। इसलिये अग्नि के सत्त्वगुण मे न तेज और न शीत केवल प्रकाश आता है। प्रकाश मे चेतनता और चेतनता मे ज्ञान आता है।

जैसे रात्रि के अन्धकार से प्राणीमात्र निद्रा के वशीभूत होकर अचेतन हो जाते है। लेकिन प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त मे प्रकाश के उदय होते ही वे स्वतः निद्रा से चेतन होकर जाग जाते है।

रात्रि के गाढ़े अन्धकार में जैसे कि सावन की अमावस्या की रात्रि का अन्धकार होता है उसमे नेत्रों को सम, विषम तथा रंग रूप का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

लेकिन प्रकाश के होते ही दिन मे नेत्रों को ज्ञान प्राप्त होता है और जो जैसा होता है वह उनको वैसे ही दिखाई देता है।

रात्रि के गाढ़े अन्धकार मे कोई मनुष्य बस्ती से दूर कहीं जाना चाहता है, तो उसको भय मालूम होता है और यदि वह दिन मे सूर्य के प्रकाश में उसी स्थान को जाना चाहे तो निर्भय पूर्वक जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अन्धकार मे अचेतनता, अज्ञान और भय है।

लेकिन प्रकाश मे चेतनता, ज्ञान और निर्भयता है।

अग्नि के रजोगुण से तेज उत्पन्न होता है। उससे विश्व का पोषण होता है। जैसे माना हम गेहूँ के आटे की रोटी

खाते है और उस से हमारा पोषण होता है, लेकिन गेहूँ के जो बीज होते है, उनका पोपण तेज से होता है। इसी से वे धूप मे सुखाये जाते हैं। जिससे उनके अंदर रहनेवाले पौधे जो बोने पर अंकुरित होकर पौधे होते है। वे बीज के अन्दर तेज ही से पोपित होते है। उन्हीं की रक्षा के लिये गेहूँ या अन्य बीजों को धूप मे सुखाते है।

रोटी के रूप मे वही तेज हमारा भी पोषण करता है। इसी तरह समस्त विश्व का पोपण सूर्य्यादि अग्नियों के द्वारा तेज से होता है। जितने खाद्य पदार्थ खाए जाते हैं, उन सबसे शुक्र के रूप मे हमें तेज और बल प्राप्त होता है।

जिस तरह दीपक का प्रकाश और तेज तेल पर अवलम्बित होता है। उसी तरह मनुष्यादि प्राणियों का जीवन तेज और बल शुक्र पर अवलम्बित होता है। शुक्र मे अग्नि का सत्त्वगुण और तेज दोनो विद्यमान रहते है। इसलिये शुक्र के रक्षण से प्राणियों के शरीर मे जीवनशक्ति, ज्ञानशक्ति, निर्भयशक्ति, तेज और बल प्राप्त होते है। शुक्र वृद्धि के साथ ही इनकी वृद्धि होती है।

अग्नि के तमोगुण से दाहक शक्ति पैदा होती है। जो समस्त पदार्थों को भस्म करती है। इसलिये समस्त पदार्थों और तत्त्वों का नाश अग्नि के तमोगुण से होता है। पदार्थों और प्राणियों के अन्दर जो अग्नितत्त्व होता है। उसी के तमोगुण से उनका नाश होता हे।

जैसे मनुष्यादि प्राणियों में ताप आदि सब प्रकार की बीमारियाँ उसी का स्वरूप होता है। जिनसे कि प्राणियों की मृत्यु होती है।

इसी तरह विश्व मे समस्त प्राणियों और पदार्थों के अन्दर की अग्नियों के तमोगुण से उनका नाश होता है। समस्त पदार्थों और तत्वो को अग्नि का तमोगुण ही भस्मकर व मृतक शरीरों को सड़ा-गलाकर महातत्त्व में विभाजित करता है। और महाप्रलय मे समस्त विश्व के महातत्त्वों और पिण्डों का विनाश करता है। उसी का नाम महाप्रकृति का उग्र तमोगुण है।

जिस तरह अग्नि किसी पदार्थ को भस्म करने के पश्चात् अपने आप भी शान्त हो जाता है। उसी तरह महाप्रलय मे महाअग्नि का तमोगुण समस्तविश्व को भस्म करने के पश्चात् अपने आप शान्त होकर प्रकाश में विलीन हो जाता है।

जिस अग्नि मे रूप आता है विश्व की बनावट मे उसकी दो तरह की गतियाँ होती है। वह अग्नि वायुतत्त्व से उत्पन्न होता है। इसलिये पहले वह अरूपा अवस्था मे समस्त आकाश में वायु की सीमा तक फैला हुआ रहता है। और ठीक इस तरह से रहता है। जैसे अग्नि बुझकर उसके परिमाणु वायु में मिलकर अरूपा हो जाते है। अग्नि की उस अवस्था को या तो उसका बुझना या उसकी अरूपा अवस्था कह सकते हैं। अग्नि की उस अवस्था में रूप नहीं होता, लेकिन तेज

होता है। जैसे गर्मियों की रात्रि के वायु मे तेज होता है जिससे मनुष्यादि प्राणियों के शरीर से पसीना निकलता है। लेकिन उसमे रूप नहीं होता। ठीक उसी तरह रूपवाली अग्नि के पहले वायु में अरूपा तेजोमय अग्नि उत्पन्न होता है। उस तेजोमय अग्नि को वायु अपनी तीव्र गति से आकाश में सर्वत्र घुमाता और फैलाता है। वायु की तरंगों के परस्पर मन्थन व संघर्षण से उस अग्नि के परमाणु एकत्रित होकर उसमें रूप उत्पन्न होता है। इस तरह अग्नि की उस अवस्था मे रूप आता है।

हम पहले कह चुके है कि जैसे गर्मियो मे तेजित वायु की तरंगों के संवर्षण से विजली उत्पन्न होती है और उसमें रूप आता है। ठीक उसी तरह विश्व के आरम्भ में अग्नि में रूप पैदा होता है।

अग्नि तत्त्व की जिस अवस्था मे रूप उत्पन्न होता है। अथवा जो अग्नि नेत्रों से देखा जाता है; उसके परमाणुओं का परस्पर योग होने से आकाश मे प्रथम असंख्य छोटे-छोटे गोले बनते है। वे बहुत से गोले एकत्रित होकर फिर अग्नि के बड़े-बड़े पिण्ड बनते हैं। इसी तरह सर्वत्र आकाश मे अग्नि के असंख्य पिण्ड वन गये। सब पिण्ड एक से नही है। भिन्न-भिन्न तरह के कोई बडे और कोई छोटे है।

जो जितने बड़े गोले बने, वे उतने ही बड़े ब्रह्माण्ड व पिण्डों के और जो जितने छोटे गोले बने, वे उतने ही छोटे ब्रह्माण्ड

व पिण्डों के सूर्य बने। इसी तरह बड़े और छोटे ब्रह्माण्डों के बड़े और छोटे असंख्य सूर्य बने। सब सूर्य अपने अपने पिण्ड और ब्रह्माण्डों मे प्रकाश, चेतनता और तेज डालने लगे।

हमारे ब्रह्माण्ड अथवा भूमण्डल का सूर्य अपने अत्यन्त तेज और बल के प्रभाव से अपने स्थान मे बड़ी तेजी से घूमता है। जिससे वह अपने समस्त ब्रह्माण्ड और हमारे भूमण्डल मे सुगमता से चेतनता प्रकाश और तेज-डाल सकता है।

हम पृथ्वी से सूर्य को जितना छोटा देखते हैं, वह उतना छोटा नहीं है। उसका विस्तार बहुत बड़ा है। वह पृथ्वी से बहुत दूर है। इसलिये हम उसको छोटा देखते है। वह पृथ्वी से कई गुना बड़ा है। उसका जितना प्रकाश, चेतनता और तेज पृथ्वी की दूरी तक पहुँचता है। उतने ही दूर तक उसके चारों ओर के पिण्डों मे पहुँचता है। सूर्य अपने सब ओर के पिण्डों मे जहाँ तक चेतनता प्रकाश और तेज डालता है, वह हमारा एक ब्रह्माण्ड है।

सूर्य मे प्रकाश चेतनता और तेज होता है, उसमे दाहक शक्ति नही रहती। जब सूर्य से तेज पृथ्वी मे पहुँचता है। तब उससे दाहक शक्ति पैदा होती है। सूर्य मे अग्नि का तमोगुण नहीं होता। इसलिये वह चिरकाल तक एक स्वरूप में रहता है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का नाश करनेवाला उसी का तमोगुण होता है।

पृथ्वी से जितना ऊपर ऊपर सूर्य का तेज होता है, उतना उसमे दाहकता का अभाव होता है। पृथ्वी तत्त्व से ही अग्नि में दाहक शक्ति उत्पन्न होती है। जैसे ईंधन पाने से अग्नि की दाहक शक्ति पैदा होती है। लकड़ी मे भी जो पृथ्वी तत्त्व होता है, उसी से अग्नि की दाहक शक्ति पैदा होती है।

सूर्य की अग्नि से पृथ्वी मे उष्ण दाहक शक्ति बनती है और चंद्रमा की अग्नि से पृथ्वी में शीत दाहक शक्ति बनती है।

सूर्य की अग्नि में चेतनता प्रकाश और तेज होता है और चंद्रमा की अग्नि में रस प्रकाश और शीत होता है।

सूर्य प्रतिदिन अपने प्रकाश, चेतनता और तेज को अपने ब्रह्माण्ड के पिण्डों में डालता है और फिर उनके अधिकांश भाग को अपने में खींच लेता है। जिससे चिरकाल तक सूर्य के मान मे अन्तर नहीं आता। इसी से प्रतिदिन सूर्य के प्रकाश, चेतनता और तेज में न्यूनाधिकता मालूम नहीं होती। यदि सूर्य की गति इस तरह न होती तो वह पृथ्वी पर की अग्नि की तरह थोड़े ही समय मे बुझ कर और विच्छिन्न होकर वायु मे मिल जाता।

आकाश में सूर्यों के बनने के पश्चात् वायु में जितना शेष अरूपा अग्नि रहा, उसका अधिकांश भाग जल और पृथ्वी के स्वरूप में गया।

जल मे मिला हुआ अग्नि जल की द्रव्यावस्था बनाता है।

जल से भाप पैदा करता है और जल मे रस उत्पन्न करता है। जल मे अधिक अग्नि के मिलने से वह भाप बनकर मेघ बनता है। उससे न्यून अग्नि के मिलने से जल की द्रव्यावस्था बनकर उसमे रस उत्पन्न होता है। और उससे न्यून अग्नि के मिलने से जल जमकर हिम बनता है।

जल मे अग्नि तत्त्व सम्मिलित न होता, तो जल की न द्रव्यावस्था बन सकती, न जल में रस उत्पन्न होता और जल से न भाप बनकर मेघ बन सकते।

पृथ्वी में मिला हुआ अग्नि से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति, पृथ्वी के गर्भ की अग्नि और मिट्टी, पत्थर, धातु आदि की अग्नि बनती है।

जल और पृथ्वी मे अग्नि के सम्मिलित होने से उसका अभाव नहीं हो जाता फिर भी वायु मे अरूपा अग्नि विद्यमान रहता है। जिससे वायु की तरंगों के संघर्षण से आकाश में अग्नि के छोटे छोटे गोले उत्पन्न होकर बिजली बनती है। बिजली के गोले भी सब एक से नहीं होते। कोई बड़े और कोई छोटे बनते है। कभी कभी तो बिजली में अग्नि का रूप ही रूप बनता है गोले नही बनते। बिजली के छोटे बड़े गोले उत्पन्न होने का कारण वायु की तरंगों के संघर्षण पर निर्भर होता है।

जब बड़ी तेज़ी से वायु की तरंगों का संघर्षण होता है। तब बिजली के बड़े गोले बनकर पृथ्वी की ओर गिरते हैं

का ही ज्ञान हो सकता है। अथवा नेत्र केवल अग्नि, जल, पृथ्वी और इन तत्त्वों से बने हुए प्राणियों और वस्तुओं को देख सकते है।

वायु और आकाश को भी जब नेत्र नही देख सकते तब उनसे भी सूक्ष्म और ऊपर जो शक्तियाँ है, उनको नेत्र कैसे देख सकते हैं। उनका दर्शन अथवा अनुभव तो केवल बुद्धि के शुद्ध प्रकाश से हो सकता है।

वायु में मिला हुआ अग्नि उसकी शान्ति गति को तीव्र करता है और तीव्र गति को शान्त करता है। तीव्र गति का अग्नि जब बिजली के रूप मे निकल जाता है तब उसकी शान्त गति हो जाती है और जब वायु तेजित होता है, तब उसकी तीव्र गति होती है।

जल मे मिला हुआ अग्नि उसका रूप बनाता है। उसको अपनी सीमा से अधिक बढ़ने पर भाप बनाता है। जिससे मेघ बनते हैं। यदि जल में मिला हुआ अग्नि उससे भाप न बनाए, तो समुद्र के जल से पृथ्वी गीली बनकर जलाकार बनी रहे।

पृथ्वी के गर्भ का अग्नि समुद्र के जल को द्रव बना रखता है। उसको अपनी सीमा से ज्यादा नहीं बढ़ने देता। पृथ्वी के अन्दर के अनेक ज़हरीले पदार्थों को भस्म करता है, बीजों को उगाता है, पृथ्वी के परमाणुओं को संगठित रखता है, पृथ्वी का रूप बनाता है।

अध्याय—१४

महाजल

अग्नि के रजोगुण में कुछ पोषित तमोगुण के बढ़ने पर जल उत्पन्न होता है। अग्नि व सूर्यादि पिण्ड तेजोमय है। वे अपने तेज को आकाश व वायुमण्डल में डाल रहे है। वायु बलवान् है। वह प्रत्येक पदार्थ को स्पर्श कर शोषता व सुखाता है। तेज और सुखाने के योग से आकाश में सूक्ष्मता से रस उत्पन्न होता है। वह प्रथम भाप से भी सूक्ष्म होता है।

जैसे गर्मियों के दिनों मे समुद्र के जल से रस को सूर्य का तेज और वायु का स्पर्श सूक्ष्मता से शोषकर आकाश मे ले जाते है। जिसको हम देख भी नहीं सकते। लेकिन आकाश मे वह शीत पाने से थोड़े ही समय मे मेघों का स्वरूप धारण कर वारिश का जल बन जाता है।

इसी तरह जल की उत्पत्ति के आरम्भ में रस भाप से भी सूक्ष्म पैदा होता है। कालान्तर में वह कुछ शीत पाने से भाप का स्वरूप धारण करता है। भाप के समूह को फिर कुछ अधिक शीत मिलने से मेघ के कण बनते हैं। मेघकणों के परस्पर मिलने से जल की बूँदें बन जाती हैं। और उनमें द्रवता अथवा गीलापन आ जाता है।

बहुत से जल के आपस मे मिलने से आकाश में मंगल आदि बहुत से जल के पिण्ड बन जाते हैं। आकाश की धारणा-शक्ति उनको आकाश मे धारण करती है। वायु के वेग से वे गतिमय हो जाते है और सूर्यों के आकर्षण से उनकी ओर आकर्षित होते है। सूर्य के तेज और प्रकाश से सब पिण्ड आकाश मे सूर्य की तरह चमकते है।

जिस तरह किसी तालाब मे सूर्य का प्रकाश पडने से उसमे सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकता है। इसी तरह आकाश मे सूर्य के प्रकाश से जल के पिण्ड भी तारों के स्वरूप मे चमकते है। जिन तारो को हम पृथ्वी से देखते हैं, वे सब अग्नि के पिण्ड नहीं है। उनमे बहुत से जल के पिण्ड है। वे सूर्य के प्रकाश से आकाश मे चमकते हुए दिखाई देते है। जिन तारों को हम पृथ्वी से छोटे-छोटे देखते है, वे उतने छोटे नही है, वे बड़े-बड़े पिण्ड है। उनमे बहुत से अग्नि के और बहुत से जल के पिण्ड है।

जल के सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते है। जल के सत्त्वगुण से रस, रजोगुण से द्रवित और तमोगुण से भाप बनती है।

रस न भाप होता है और न द्रवित। रस गीलेपन के अभाव मे भी रहता है। जैसे सूखे फलों मे गीलापन नही होता। लेकिन रस रहता है और रस गीलेपन मे भी होता है। जैसे फलों मे पैदा होनेवाले रस वृक्षों के गीलेपन के विना नहीं आ सकते। सूखे फलों के रस भी रसना के गीलेपन के

विना मालूम नहीं हो सकते । जल की सूक्ष्म से सूक्ष्म अवस्था रस ही है। रस तेज से उत्पन्न होता है। इसलिए वह तेज मे भी रह सकता है, जैसे सूखे फलो मे रहता है। सूखे फलों मे जो तेज होता है, उसी से उनके रस सुरक्षित रहते है।

जितने भी रस होते है, उनकी उपज जलतत्त्व के सत्त्वगुण से होती है। जल के सत्त्वगुण और अग्नि के सत्त्वगुण से चन्द्रमा की उत्पत्ति होती है। अर्थात् रस और प्रकाश के योग से चन्द्रमा बनता है। चन्द्रमा की बनावट मे जल से जो रस जाता है, उसको सोमरस कहते है। चन्द्रमा से उसका कुछ भाग वनस्पतियों मे उतरता है। जिस तरह वायु चन्द्रमा के प्रकाश को पृथ्वी मे बिखेरता है, उसी तरह वह चन्द्रमा से सोमरस को सूक्ष्मता से शोषकर तेज, जल, पृथ्वी द्वारा वनस्पतियों को प्रदान करता है। वह वनस्पतियों मे उतरने मे मीठा, खट्टा, खारा, कड़वा, चरफरा, तिक्त, आदि समस्त रसों मे विभाजित हो जाता है।

वनस्पतियों की उत्पत्ति चन्द्रमा के पराग केशर और पृथ्वी की गर्म केशर से होती है। इसलिये बीज के पराग मे जैसा रस होता है, वह जल और चन्द्रमा से वैसे ही रस को ग्रहण करता है।

हम पहिले कह चुके है कि प्रथम जल से रस की उत्पत्ति होती है। वह चन्द्रमा मे पहुँचकर सोमरस बनता है,

और वनस्पतियों मे उतरकर मीठे, खट्टे, खारे, कड़वे, तिक्त और चरफरे आदि अनेक रसों के भेद मे विभाजित होता है।

मनुष्यादि प्राणियों के शारीरिक जलतत्त्व के सत्त्वगुण से रसना बनती है। इसलिये प्राणियों को रसों का ज्ञान रसना के द्वारा होता है।

जैसे चन्द्रमा में रस सोमरस बनता है और वह वनस्पतियो मे अनेक रसों के भेद मे विभाजित होता है, उसी तरह प्राणियों की रसना मे भी सोमरस होता है। उसी से रसना को समस्त रसों का ज्ञान होता है। सोमरस अर्थात् जिस रस से प्राणियों का पोषण होता है।

कालान्तर मे रस द्रवित होता है और वायु से उसकी गति बनती है। हम पहिले कह चुके है जल की उत्पत्ति के प्रथम रस उत्पन्न होता है। उसको वायु अपनी गति से आकाश मे सर्वत्र फैला देता है। कालान्तर मे उसमें कुछ शीत आने से मेघ के अणु बनते है। वे वायु की गति से एकत्रित होकर आकाश मे मेघों के झुण्ड बनते है। फिर वे वायु की तरंगों के संघर्षण मे आपस मे मिलकर जल की बूँदे बन जाती है। जल की बूँदे भी वायु की तरंगो के संघर्षण से आपस मे मिल जाती है, और उनसे जल के पिण्ड बन जाते है। इस तरह आकाश मे जल के असंख्य पिण्ड बनते है। पिण्डों के बनने के पश्चात् वायु मे जितनी शेष भाप रहती

है, उससे मेघ बनते है। वायु की तरंगों की टक्करों से उनका जल छोटी छोटी बूँदें बनकर बारिश पैदा होती है। बारिश की बूँदों का स्थूल रूप धारण करने से वे आकाश में नहीं ठहर सकती और पृथ्वी मे बरसती हैं।

बारिश का जल पृथ्वी पर पड़ने से उसके कुछ अंश को पृथ्वी शोप लेती है। उस शोपे हुए जल का कुछ अंश पृथ्वी के अन्दर समाता है। वहाँ उसके अधिक संयुक्त होने पर वह धारा रूप मे प्रवाहित होता हुआ बाहर नदियों के रूप में बहता है।

मेघों का जो जल पृथ्वी की ऊपरी सतह मे बहता है, वह भी अधिक संयुक्त होकर धारा और नदियों के रूप में बहता है।

मेघों के बरसने के समय पृथ्वी की ऊपरी सतह मे जल की बहुत सी बूँदे संयुक्त होकर उनमें बहने की गति आती है। बहुत से जल के संयुक्त होने पर धाराये बनती हैं। और बहुत सी धाराओं के योग से नदियाँ बनती है।

मेघों का जो जल पृथ्वी में समाता है वह भी पृथ्वी के अन्दर इसी तरह संयुक्त होकर धारा और नदियो के रूप मे प्रवाहित होता है। अन्तर सिर्फ इतना होता है कि पृथ्वी की ऊपरी सतह के जल को वायु शीघ्र शोपकर सुखा देता है और पृथ्वी के अन्दर का पानी इतना शीघ्र नही सूखता।

पृथ्वी के अन्दर जहाँ गीली मिट्टी होती है, जिसमे वायु

असर नहीं कर सकता, उन हिस्सों का जल वायु नहीं शोष सकता या बहुत कम शोष सकता है। इसलिये पृथ्वी के गर्भ के उन हिस्सों का पानी नहीं सूखता। वहाँ जल की धारायें और नदियाँ बराबर प्रवाहित बनी रहती है।

पृथ्वी के गर्भ के जिन हिस्सों में वायु घुसकर जल शोष लेता है, उन हिस्सों का पानी सूख जाता है। इसलिये भूगर्भ के उन हिस्सों मे जल की धारायें और नदियाँ बराबर प्रवाहित नही रह सकतीं।

धारा और नदियों का जल प्रवाहित वायु और पृथ्वी के आकर्षण से होता है। जल में मिला हुआ वायु उसको धकेलता है। और पृथ्वी का आकर्षण उसको अपनी नीचे की ओर खींचता है। इसलिये जहाँ पृथ्वी का बहुत ढलवाँ हिस्सा होता है, वहाँ जल तीव्र गति से बहता है। क्योंकि वहाँ पृथ्वी का आकर्षण उस जल को नीचे की ओर शीघ्रता से खींचता है।

पृथ्वी जहाँ ढलवाँ होती है अथवा सम भूमि होती है, वहाँ के जल को पृथ्वी का आकर्षण रोकता है। किंतु जल का कमती हिस्सा होने से उसमें पृथ्वी का कम आकर्षण पड़ता है और जल मे मिला हुआ वायु उसको धकेलता रहता है। पृथ्वी के आकर्षण से ही जल पृथ्वी की ढलवाँ ओर बहता है। ऊपर की ओर नहीं बह सकता। क्योंकि पृथ्वी का आकर्षण प्रत्येक वस्तु को अपनी नीचे की ओर खींचता है। यह उसका अटल नियम है।

तालाब और झीलों के जल पर धारा और नदियों के जल से पृथ्वी का अधिक आकर्षण पड़ता है। इसलिये उनकी बहने की गति रुक जाती है। किन्तु उनका जल समुद्र के जल की तरह नहीं रुकता। उनका जल धारा और नदियों के रूप मे भी बहता रहता है। जिससे तालाब और झीलों का जल ठहरा हुआ भी रहता है और प्रवाहित भी होता है।

समुद्र का जल इतना अधिक है कि वह पृथ्वी की ऊपरी सतह के तीन हिस्सों में फैला हुआ है। इसलिये समुद्र के जल पर पृथ्वी का तीन चौथाई आकर्षण पड़ता है। उस भारी आकर्षण से समुद्र के जल की प्रवाहित गति रुक जाती है। जिससे समुद्र का जल थमा हुआ रहता है।

धारा, नदियों और मेघों का जल प्रवाहित होकर समुद्र में थमता है। जिस तरह धारा और नदियों का जल प्रवाहित होकर पृथ्वी में घूमता है। यदि उसी तरह समुद्र का जल प्रवाहित होकर पृथ्वी में घूमता, तो पृथ्वी समुद्र के जल से जलाकार हो जाती और उसमे जलचर जीवों के सिवाय स्थलचर कोई जीव न रह सकते।

जब जल का कमती हिस्सा धारा और नदियो के रूप में होता है, तब वह अपने मार्ग मे बहकर पृथ्वी मे घूमता है और जब जल का बहुत बड़ा हिस्सा समुद्र के रूप में संयुक्त होता है, तब थमकर उसकी गति रुक जाती है। परमात्मा का क्या ही अच्छा प्रबन्ध है।

इसका कारण यह है कि धारा और नदियों का जल कमती होने से उनमे पृथ्वी का कम आकर्षण पड़ता है। इसलिये धारा और नदियों के जल में मिला हुआ वायु जल को पृथ्वी की ढलान की ओर प्रवाहित करता रहता है।

किन्तु समुद्र के जल पर पृथ्वी का भारी आकर्षण पड़ता है, जिससे वह थम जाता है।

यद्यपि समुद्र के जल की प्रवाहित गति पृथ्वी के आकर्षण से थम जाती है तथापि जल मे मिला हुआ वायु समुद्र के जल को धकेलता रहता है। जिससे समुद्र मे तूफान उठते है और समुद्र मे जल की तरगे उठती रहती है।

वायु चन्द्रमा पृथ्वी के आकर्षण के कारण समुद्र में ज्वार-भाटे होते है। आमावास्या को चन्द्रमा कान्तिहीन होने से पृथ्वी पर उसका कम आकर्षण पडता है। जिससे पृथ्वी का अधिक आकर्षण बढ़कर समुद्र के जल को पृथ्वी की नीची सतह की ओर खींच लेता है। इसलिये आमावास्या को समुद्र का जल अधिक से अधिक सिकुड़ जाता है।

पूर्णमासी को चन्द्रमा का अधिक से अधिक आकर्षण वायु के कारण पृथ्वी पर पड़ता है। जिससे समुद्र के जल में मिले हुए वायु को अधिक बल प्राप्त होता है और वह समुद्र के जल को वायुमण्डल की ओर बढ़ाता है इसलिये पूर्णमासी को समुद्र का जल अधिक से अधिक बढ़ता है।

समुद्र का जल तिल भर न घटता और न बढ़ता। केवल

अमावस्या को समुद्र के जल मे मिला हुआ वायु पृथ्वी के आकर्षण से दब जाता है। इसलिये जल पृथ्वी की नीची सतह की ओर सिकुड़ता है और पूर्णमासी को समुद्र के जल मे मिले हुए वायु को अधिक बल प्राप्त होता है। इसलिये वह जल को ऊपर वायुमण्डल की ओर बढ़ाता है। इसी से समुद्र में ज्वार-भाटे होते रहते है।

समुद्र का जल खुश्की के अन्दर भी फैला हुआ रहता है। कुओं का पानी वही समुद्र का फैला हुआ जल है। यदि पृथ्वी की ऊपरी सतह के जल को वायु शोषकर वायुमण्डल मे न ले जाता तो समुद्र के जल से पृथ्वी की ऊपरी सतह भी कुओं की सतह की तरह बिलकुल गीली बनी होती।

समुद्र के नीचे पृथ्वी का अधिक अग्निवत्त्व रहता है, उसी से समुद्र के जल की द्रवावस्था बनी रहती है, नही तो समुद्र का जल पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ के जल की तरह जमकर हिम बना रहता।

समुद्र के नीचे पृथिवी के गर्भ में जो बड़वानल अग्नि होती है, वह समुद्र के जल की द्रव अवस्था बनाने के अतिरिक्त समुद्र के जल से भाप बनाकर मेघो को पैदा करता है। जब वायु जल को सूक्ष्म रूप से भाप द्वारा शोषकर आकाश मे ले जाता है, तब वहाँ उस पर पृथ्वी का आकर्षण पड़ता है। इसलिये आकाश से मेघों का जल अन्य पिण्डो में नहीं पहुँच सकता और पृथ्वी का आकर्षण उसको पृथ्वी के ऊपर खींच लेता

है, जिससे मेघों का जल बारिश रूप मे पृथ्वी के ऊपर बरसता है।

नदियों, धाराओं और मेघों के जल पर पृथ्वी का आकर्षण क्रमशः कम पड़ता है। मेघों के कण बहुत छोटे होने के कारण उन पर पृथ्वी का बहुत कम आकर्षण पडता है। इसलिये मेघों के कणों को वायु पृथ्वी से आकाश तक पहुँचाता है। और ज्यो ही उनके योग से आकाश मे पानी की बूँदे बनतीं हैं त्यों ही आकर्षण उनको आकाश से पृथ्वी मे खींच लेता है। आकाश मे मेघों के समूह को पृथ्वी का आकर्षण नीचे की ओर खींचे रहता है, इसलिये वे आकाश से अन्य पिण्डों में नहीं पहुँच सकते।

धारा और नदियों के जल को भी पृथ्वी का आकर्षण पृथ्वी की ओर खींचे हुए रहता है। किन्तु पृथ्वी के सम न होने के कारण उनका जल पृथ्वी की ढलवाँ ओर लुढ़कता रहता है। उनकी प्रवाहित गति रोकने के लिये उनके जल पर पृथ्वी का अधिक आकर्षण नहीं पड़ता, क्योंकि वे जल के बहुत न्यून हिस्से है। समुद्र के जल का विस्तार बहुत बड़ा है, इसलिये उस पर पृथ्वी का बहुत बड़ा आकर्षण पड़ता है, जिससे समुद्र की प्रवाहित गति रुककर थम जाती है।

पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ का जल जमकर हिम बन जाता है, क्योंकि पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी नोकों तक पृथिवी के गर्भ की गर्मी कम पहुँचती है

और हिमालय पहाड़ पृथ्वी की सतह से बहुत ऊँचा होने के कारण उसने भी पृथ्वी के गर्भ की गर्मी कम पहुँचती है, इसलिये उन स्थानों का जल जमकर हिम बन जाता है। वहाँ का वायुमण्डल भी ठण्डे स्थानों को स्पर्श कर ठण्डा बना रहता है, जिससे वहाँ के मेघों का जल जमकर वायुमण्डल ही से हिम बनकर बरसता है। जल मे गर्मी की न्यूनता से उसके कण जमकर हिम बन जाता है। पाला भी इसी तरह बनता है।

जाड़ों में रात्रि को पृथ्वी की ऊपरी सतह में गर्मी की न्यूनता होने से अधिक ठण्ढक हो जाती है। उस मौसिम मे रात्रि को पृथ्विी का वायुमण्डल पृथ्वी को स्पर्श कर ठण्डा हो जाता है, इसलिये वायु में मिली हुई भाप जमकर पृथ्वी में पड़ने से पाला बन जाता है। और पृथ्वी मे उस पाले को कुछ गर्मी मिलने से वह पिघलकर ओस बनता है।

दिन को सूर्य की गर्मी के कारण पाला और ओस सूखकर भाप द्वारा वायुमण्डल में मिल जाते है। लेकिन पृथिवी के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवो और हिमालय पहाड़ पर गर्मियों मे भी ठण्ढक बनी रहती है, इसलिये वहाँ जल जमकर हमेशा हिम बना रहता है।

गर्मियों में सूर्य की गर्मी के कारण उन स्थानों का कुछ हिम पिघलकर धारा और नदियों के रूप में बहता है। उसी समय उन स्थानों में जल पृथ्वी के अन्दर भी समाता है, जिससे उनमें नित्य जल की बहनेवाली धारा और नदियों की प्रवा-

हित गति बनी रहती है। प्राय· हिम के स्थान बहुत कड़े पहाड़ों से बने रहते हैं।

उस प्रबन्धकर्त्ता परमात्मा ने जलचर जीवों के लिये समुद्र बनाये, और उनके सुख-आनन्द के लिये समुद्र को स्थिर बनाया है। स्थलचर जीवधारियों के जल-सम्बन्धी कार्यों के लिये जल की धारायें, नदियाॅ, कुए, और वनस्पतियों के लिये मेघ बनाये है।

जलचर जीवों के सुख-शान्ति के लिये समुद्र नित्य अपनी एक मर्यादा पर स्थिर है। यदि समुद्र का जल कभी अधिक बढ़ जाता और कभी बिलकुल घट जाता, तो जलचर जीवधारी नष्ट हो जाते और उनकी सुख शांति भी जाती रहती। जलचर जीवधारी अनन्त ऐसे है, जो एक पल भी बिना जल के नहीं रह सकते। इसलिये समुद्र अगाध बनाये गये है।

धारा और नदियों का पानी जिस तरह घटता और बढ़ता है, उस तरह बिलकुल सूख जाता. तो स्थलचर जीवधारी जो समुद्र से बहुत दूर रहते हैं जल के बिना मर जाते। इसलिये धारा और नदियों का पानी बराबर प्रवाहित होता रहता है।

स्थलचर जीवधारियो को हर समय पानी की उतनी आवश्यकता नहीं होती, जितनी जलचर जीवधारियों को होती है। उनको दिन भर मे पाॅच या चार मर्तबे पानी पीने की आवश्यकता पड़ती है। वे धारा, नदियों और कुओं में जाकर अपनी जल-सम्बन्धी आवश्यकता पूरी कर लेते है। इसलिये

संसार-हित के लिये धारा और नदियों के जल की नित्य प्रवाहित गति बनी रहती है।

वनस्पतियों को भी हमारी तरह पानी की आवश्यकता होती है। लेकिन वे अचर है। वे मनुष्य, गाय, भैंस, चिड़ियों की तरह धारा, नदियों व कुओं मे जाकर जल नही ले सकते, इसलिये जल उनके हित के लिये मेघ बनता है। मेघ वर्षा द्वारा वनस्पतियों को उनके स्थान मे जल पहुँचाता है। अथवा वनस्पतियों के हित के लिये जल मेघ बनकर बरसता है।

हमारी तरह वनस्पतियों को हर समय जल की आवश्यकता नही होती। वे एक समय की बारिश से एक या दो माह तक अपना निर्वाह कर सकती है। बड़े-बड़े वृक्ष अपनी जड़ों से पृथ्वी के अन्दर का पानी भी लेते है। इसलिये मेघों को वनस्पतीयों के लिये नित्य बरसने की आवश्यकता नहीं होती। वे समय-समय पर बरसते है। मेघों के बरसने से धारा और नदियों के पानी की कमी भी पूरी हो जाती है। छोटे-छोटे जन्तु भाप से जल को ले सकते है। इसलिये जल नित्य संसार-हित के लिये समुद्र, भाप, मेघ, बारिश, धारा, नदियों और कुओं के चक्र में घूमता रहता है।

वेल-वृक्षों के अवयवों में पृथ्वी से जो रस पहुँचता है उसमें अधिकतर जल का अंश होता है। मनुष्य आदि समस्त प्राणियों के शरीर में जो रस, रुधिर, पसीना और मूत्र होता है, वे सब जलतत्त्व के अंश हैं। शरीर मे मांस का गीलापन

अथवा शरीर के हरएक अवयवों मे गीलापन जलतत्त्व से होता है।

जिस तरह विश्व के अन्दर जल भ्रमण कर रहा है, उसी तरह हमारे शरीर-अवयवों मे जल, रुधिर, रस के रूप मे नाड़ियों द्वारा बराबर भ्रमण करता है। उसकी गति शरीर मे एक पल भी नही रुकती। जल के सत्त्वगुण से जिह्वा में रस, रजोगुण से लिङ्ग और तमोगुण से आलस्य उत्पन्न होता है।

जिस जल को मनुष्य, गाय, भैंस आदि प्राणी पीते है, उसके सत्त्वगुण अंश में रसना का रस, रजोगुण से रुधिर और शरीर का गीलापन और तमोगुण से मूत्र, पसीना और आलस्य पैदा होते है।

महाजल उत्पन्न होने के आरम्भ मे तेज मे पोपित तमोगुण के बढ़ने से रस, रस मे रजोगुण होने से द्रवित अथवा गीलापन और द्रविता मे तमोगुण आने से भाप बनती है। इस तरह जल बनता है।

जल के सत्त्वगुण से सृष्टी के रस, रजोगुण से द्रवित और सृष्टि का गीलापन और तमोगुण से भाप बनती है।

अध्याय—१५

पृथ्वी

जल मे कुछ अधिक पोपित तमोगुण के बढ़ने पर पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होता है। पृथ्वी आरम्भ काल में बहुत गर्म जल का पिण्ड थी। क्योंकि जल तेज से उत्पन्न होता है। पृथ्वी आद्यकाल मे जब जलाकार थी तब वायु के प्रबल धक्कों से उसकी तरंगें पहाड़ों की तरह ऊँची और नीची उठती थीं। इस क्रम से अनन्त काल तक पृथ्वी उष्ण जलाकार रहती है। उसके पश्चात् पृथ्वी की ऊपरी सतह के उष्ण जल की गर्मी वायु के प्रबल धक्कों से धीरे धीरे शिथिल होती है। जिससे वह जल गर्म जल की अपेक्षा कुछ गाढ़ा बनता है। इस क्रम से असंख्य काल में कुछ अधिक शीत के कारण जल की तरंगों की ऊँची नीची और सम सतहयें धीरे धीरे जमकर हिम बनता है। जैसे दूध धीरे धीरे जमकर दही बनता है।

इस तरह पृथ्वी की ऊपरी सतह के कई भागों मे जल जमकर हिम बन गया। हिम के ठोस परमाणुओं का बहुत काल पश्चात् धीरे धीरे रूपान्तर होकर पृथ्वीतत्व अथवा मिट्टी के अणु बन जाते है। मिट्टी प्रथम कीचड़ के रूप में बनती है। कीचड़ के बनते ही उसमें गन्ध उत्पन्न होती है।

इस प्रकार प्रथम जलाकार पृथ्वी की सबसे ऊँची तरंगों का उष्णजल वायु के प्रबल धक्कों से धीरे धीरे शिथिल होकर हिम बनता है। उसमे धीरे धीरे मृत्तिका शक्ति आती है। उससे प्रथम कीचड़ बनता है। कीचड़ मे गन्ध पैदा होती है। कीचड़ भी धीरे धीरे सूखकर कालान्तर में खुश्की बनता है। इस तरह पृथ्वी तत्व उत्पन्न होता है।

जलाकार पृथ्वी की सबसे ऊँची तरंगें जो पहले जमकर हिम का पहाड़ बनती हैं, वह हिमालय पहाड़ है। उसी में सबसे प्रथम पृथ्वीतत्त्व बनता है। उसके पश्चात् जलाकार पृथ्वी मे जो अन्य ऊँची नीची और सम तरंगें उठती थीं, वे भी खुश्की के स्वरूप में ऊँचे नीचे पहाड़ और सम भूमि बन गए। इस तरह पृथ्वी मे ऊँचे पहाड़, नीची घाटियाँ और समतल भूमि उत्पन्न हुई।

पृथ्वी का रंग प्रथम सफेद होता है और धीरे धीरे कालान्तर में वह परिवर्तित होकर गेहुवाँ रंग धारण करती है।

पृथ्वी का अग्नि जो प्रथम जल में सम्मिलित रहता है, वह धीरे धीरे पृथ्वी के गर्भ में घुसकर उसके अन्दर सुरक्षित हो जाता है। जैसे राख के बीच अग्नि सुरक्षित होती है।

पृथ्वी की नीची सतहों में जो जल रह जाता है वह पृथ्वी के गर्भ की अग्नि से जम नहीं सकता। क्योकि पृथ्वी के गर्भ की अग्नि से वह द्रवित बना रहता है। उस जल से पृथ्वी में समुद्र बने हैं।

पृथ्वी में जो बहुत ऊँचे पहाड़ बने, इनमें जल जमकर हिम बना रहता है। क्योंकि उनकी ऊँचाई तक पृथ्वी के गर्भ की अग्नि नहीं पहुँच सकती। इसलिये वहाँ का जल जमकर हिम बनता है।

यह पृथ्वी पिण्ड जल, अग्नि, वायु और मिट्टी के संयोग से मिश्रित है और आकाश इसको धारण किए हुए है। जिस पिण्ड पर हम रहते है इसी का नाम पृथ्वी है। यह छोटे छोटे परमाणुओं के समूह से बनी है। वे परमाणु एक ही जाति के नही है। उनमें से कुछ जल के परमाणु हैं। जिनके संयोग से समुद्र व पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ का हिम बना है।

कुछ अग्नि के परमाणु है, जिनके योग से पृथ्वी के अन्दर का अग्नि बना है। कुछ वायु के परमाणु है, जिनसे पृथ्वी का वायुमण्डल बना है। कुछ मिट्टी के परमाणु है, जिनके संयोग से ख़ुश्की बनी है। इन सब तत्त्वों के परमाणुओं के मेल से यह विस्तृत पृथ्वी बनी है। पृथ्वी बनने में इन सब तत्त्वों का सम्बन्ध इस तरह है—पॉच हिस्से जल के, तीन हिस्से अग्नि के इन पचास हिस्से वायु के और, बारह हिस्से खुश्की के है।

तीन हिस्सा जल से समुद्र बने है, एक हिस्सा जल से पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ का हिम बना है और एक हिस्सा जल नित्य पृथ्वी के वायुमण्डल में मिला हुआ रहता है।

अग्नि का एक हिस्सा पृथ्वी के गर्भ मे है, जो कभी कभी ज्वालामुखी रूप में उभड़ता है। एक हिस्सा अग्नि छुपे रूप से मिट्टी पहाड़ो मे और एक हिस्सा जल के सब हिस्सों में सम्मिलित रहता है।

वायु क पॉच हिस्से जल में, तीन हिस्से अग्नि मे, बारह हिस्से ख़ुश्की मे और २६ हिस्से पृथ्वी के सब ओर बाहर फैले हुए रहते है।

ख़ुश्की का एक हिस्सा पृथ्वी की बाहरी सतह हैं। जिस पर स्थलचर जीवधारी बसते हैं और वनस्पतियॉ उगती है। दस हिस्से ख़ुश्की से जल थमा है और एक हिस्सा ख़ुश्की में अग्नि टिका हुआ है।

पृथ्वी-पिण्ड की ऊपरी सतह के चार हिस्से जल से आच्छादित है। तीन हिस्सों में समुद्र है और एक हिस्से मे उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवो व हिमालय पहाड़ का हिम टिका है।

समुद्र का जल ख़ुश्की के आधार पर थमा है। पृथ्वी की ऊपरी सतह की तरह समुद्र के अन्दर भी सम भूमि व ऊँचे नीचे पहाड़ होते है। उन्हीं में समुद्रों का जल थमा हुआ है। वह ठीक इस तरह से है, जैसे तालाव का जल तालाव की भूमि से थमा हुआ रहता है।

समुद्र का जल ख़ुश्की में भी सम्मिलित रहता है। वह हर समय ख़ुश्की को गीला बनाये रहता है। पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायु शोष कर पृथ्वी से बाहर ले जाता है। इस-

लिये पृथ्वी की ऊपरी सतह गीली नहीं होती। बाकी पृथ्वी के अन्दर गीलापन रहता है। अथवा पृथ्वी के अन्दर की खुश्की से जल मिला हुआ रहता है।

कुओं का जल वही समुद्र का जल है। कुओं का पानी प्रायः समुद्र के पानी की तरह खारा या कड़वा नहीं होता। इसलिये कि मिट्टी अपने अन्दर के पानी को शोध कर शुद्ध और स्वच्छ बना देती है।

यदि पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायु और सूर्य का तेज न शोष लेते तो कुओं की सतह की तरह पृथ्वी की ऊपरी सतह भी बिलकुल गीली बनी होती।

नदियों का जल भी पृथ्वी के अन्दर का जल है। पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायु शोष कर भाप द्वारा वायु-मण्डल में ले जाता है। भाप के समूह से बादल बनते हैं। बादलों के परमाणुओं के परस्पर मिलने से पानी की बूँदें बनती है और वे बारिश के रूप मे पृथ्वी पर बरसती है।

सूर्य की गर्मी के अतिरिक्त पृथ्वी के गर्भ में भी अग्नि है। ज्वालामुखी उसी अग्नि से उभड़ते है। उस अग्नि से पृथ्वी को बड़ा भारी लाभ होता है। यदि पृथ्वी के अन्दर अग्नि न होता तो समुद्र और नदियों का जल हिमालय पहाड़ के हिम की तरह जमकर हिम बना रहता और तमाम जीवजन्तु व वनस्पतियों का जल सम्बन्धी कार्य बन्द हो जाते।

समुद्र की द्रव्यावस्था, मेघों का बनना और नदियों का

बहाव, जल के ये सब कार्य पृथ्वी के अन्दर की अग्नि से होते रहते है। पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवो और हिमालय पहाड़ मे इस कारण पानी जमकर हिम बन जाता है कि पृथ्वी के गर्भ की गर्मी उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों तक कम पहुँचती हैं। इसलिये वहाँ का पानी जमकर हिम बना रहता है। हिमालय पहाड़ पृथ्वी की सतह से बहुत ऊँचा है। उसके अन्दर की गर्मी वहाँ तक अधिक नही पहुँच सकती। जिससे वहाँ सूर्य की पूर्ण गर्मी होने पर भी जल जमकर हिम बन जाता है।

पृथ्वी के हिम आच्छादित स्थानों का हिम बनने मे उतना सूर्य की गर्मी पर निर्भर नहीं, जितना कि पृथ्वी की गर्मी की न्यूनता पर निर्भर है।

समुद्र से मेघों के बनने मे पृथ्वी के अन्दर की गर्मी बड़ा कार्य करती है। जाड़ो मे सूर्य की गर्मी कम पड़ने पर भी मेघ बनकर बरसते है। इसका यही कारण है कि पृथ्वी के अ दर की गर्मी समुद्र से मेघ बनाने का कार्य करती रहती है।

नदियों का बहाव भी पृथ्वी के अन्दर की गर्मी से होता है, अगर पृथ्वी के अन्दर की गर्मी पानी को पिघलाकर द्रव्य न बनाती तो गंगा आदि नदियाँ हिमालय से निकलकर समुद्र तक न पहुँचती। अथवा हिमालय पहाड़ के हिम की तरह एक ही स्थान में जमकर रह जातीं और अन्य स्थानों में जाने से नदियों का बहाव बन्द हो जाता।

अग्नि का एक भाग मिट्टी, पहाड़, सोना, चांदी, ताँबा, लोहा आदि ठोस पदार्थों के परमाणुओं में मिला हुआ रहता है। मिट्टी में मिला हुआ अग्नि वनस्पतियों को पैदा करनेवाली उर्वरा शक्ति पैदा करता है। पेड़-पौधों को पुष्ट करता है। उन में पत्ते, पुष्प और फलों की पुष्टि करता है।

मिट्टी के परमाणुओं से अग्नि का संयोग न होता तो पृथ्वी में कुछ भी पैदा न होता, न पृथ्वी मेघों के जल को अपनी ओर खींच सकती, न पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होती और न वनस्पतियाँ जीवित रह सकतीं। पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमछादित पहाड़ों में इसी से कुछ पैदा नहीं होता कि वहाँ की मिट्टी के परमाणुओं में अग्नि की न्यूनता होती है।

मिट्टी में मिले हुए अग्नि के कारण ही पहाड़, सोना, चांदी ताँबा, लोहा आदि धातु बनते है।

अधिक गर्मी से मिट्टी के परमाणु विशेष परस्पर मिलने से पहाड़ वनते हैं। जैसे गीली मिट्टी को अग्नि के अन्दर रखने से ईंटे वनती है, उसी तरह पथ्वी के गीले भाग को दबाव और विशेप गर्मी और शीत के मिलने से कड़े पहाड़ बनते हैं।

पृथ्वी के विशेप चिकने पीले रंग के गीले हिस्से को विशेष गर्मी दबाव और शीत के मिलने से सोना बनता है। पृथ्वी के सुफेद रंगवाले चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी, दवाव और शीत मिलने से चाँदी वनती है। पृथ्वी के लाल रंगवाले

चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी, दबाव और शीत मिलने से ताँबा बनता है। पृथ्वी के काले रंगवाले चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी, दबाव और शीत मिलने से लोहा बनता है। इसी तरह सब धातुओं के बनने मे पृथ्वी का चिकनापन, गीलापन, गर्मी, दाबव और शर्दी आदि विषयों में अलग अलग अन्तर होता है।

पहाड़ों और धातुओं का अग्नि उनके परमाणुओं को संगठित रखता है। जिससे उनके परमाणु आपस में बिलकुल जुड़े हुए रहते हैं। जब धातु और पहाड़ अग्नि से इतने तप्त होते हैं कि उनके अन्दर का अग्नि बाहर हो जाता है। तब उनके परमाणु पिघलकर अथवा राख द्वारा अलग अलग होते हैं।

पहाड़ों की तरह सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा जल्दी जलकर चूना व राख नहीं बन जाते। इसका कारण यह है कि पहाड़ों की अपेक्षा सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा आदि धातुओं में विशेष चिकनापन होता है।

अग्नि पहाडों को धातुओं की अपेक्षा जल्दी जलाकर राख द्वारा उनके परमाणुओं को अलग अलग कर देता है। लेकिन धातुओं को उनके चिकनेपन के कारण वह जल्दी जलाकर राख नहीं बना सकता। अलबत्ता उनके चिकनेपन को अनरस करनेवाली वस्तुओं के डालने मे वे सहज मे भस्म हो सकते हैं।

प्रत्येक वस्तु के परमाणु अलग अलग तभी हो सकते हैं, जबकि उनके अन्दर का अग्नि बाहर हो जाता है। प्रत्येक वस्तु के अन्दर का अग्नि बाहर होने के दो कारण होते है। सृष्टि में कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनको पानी में डालने से उनके अन्दर की गर्मी बाहर हो जाती है और कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनकी गर्मी को पानी बाहर नहीं कर सकता, उनकी गर्मी को अग्नि बाहर कर सकता है।

पृथ्वी के अन्दर की गर्मी, मिट्टी-पहाड़ों में मिला हुआ अग्नि और जल में सम्मिलित अग्नि, सब संगठित होकर पृथ्वी के एक बड़े भारी कार्य को किए हुए है। वे पृथ्वी के अलग अलग परमाणुओं को एकत्रित कर पृथ्वी का ठोस स्वरूप बनाए हुए है। जैसे घडे के अलग अलग परमाणु एकत्रित होकर घड़े का ठोस स्वरूप बनाते है। घड़े के अलग अलग परमाणु भी अग्नि से ही एकत्रित होते है। घड़े के आरम्भ काल में उसके गीलेपन में जो जलतत्त्व होता है, घड़े की परिपक्व अवस्था में उसका अभाव हो जाता है। इसलिये घड़े के परमाणुओं का संगठन अग्नितत्त्व से बना रहता है। संगठन में जलतत्त्व केवल सहायक होता है।

पृथ्वी अपनी अग्नि से वायु, मेघ और समुद्र को अपनी ओर आकर्षित किए हुए रहती है और पृथ्वी की समस्त वस्तुयें उसमे टिकी हुई रहती है।

यदि पृथ्वी के अन्दर अग्नि न होता तो उसके परमाणु

अलग अलग होकर वह छिन्न भिन्न हो जाती। महाप्रलय में जब उसके अन्दर का अग्नि बाहर हो जाता है, तब उसके परमाणु अलग अलग होकर वायुमण्डल में उड़ जाते हैं और पृथ्वी छिन्न भिन्न हो जाती है। इसलिये पृथ्वी मे मिला हुआ अग्नि उसके लिये कितना लाभकारी है। अर्थात् पृथ्वी का जीवन है।

पृथ्वी के सयोग मे वायु का जितना अधिक भाग सम्मिलित है, उसको उतना ही उसकी अधिक आवश्यकता है। जल में वायु के जो पॉच हिस्से सम्मिलित हैं। उनसे जलचर जीव सॉस लेते हैं, तैरते हैं। उसी वायु से जल के परमाणु की जुदाई होती है जिससे जल में बहने की गति पैदा होती है।

यदि समुद्र के जल में मिला हुआ वायु उसके परमाणुओं को अलग अलग न किये होता तो जल के परमाणु आपस में इतने घनिष्ठ मिले होते कि समुद्र का जल पहाडों से भी कड़ा बना रहता। उसमें न तो बहने की शक्ति रहती और न उसमे कोई जीवजन्तु रह सकते।

अग्नि मे मिला हुआ वायु उसको जागृत रखता है। अग्नि को एक स्थान से दूसरे स्थान मे बढ़ाकर फैलाता और दौड़ाता है। यदि अग्नि मे वायु का संयोग न होता तो उससे जलने और फैलने के कार्य न हो सकते।

वायु के बारह हिस्से जो मिट्टी मे मिले हुए है, वे मिट्टी के अणुओं को फोपला किए हुए रहते हैं। वही तमाम

बीज वनस्पतियों को उगाकर उनकी जड़ों को पृथ्वी के अन्दर फैलाते है। उन्हीं से तमाम बेल वृक्ष व पौधों की जड़ें पृथ्वी से रस शोषकर अपने सब अंगों में पहुँचाते हैं।

पृथ्वी के गर्भ की अग्नि को जलाना व मिट्टी पहाड़ों में जो छिपी हुई अग्नि है उसको जागृत रखना और पृथ्वी की आवश्यकता से अधिक अग्नि व जल को पृथ्वी से पृथक करना, ये सब कार्य पृथ्वी मे मिले हुए वायु से होते हैं।

उनतीस हिस्से वायु जो पृथ्वी के बाहर है वे जल और अग्नि के बढ़े हुए हिस्सों को शोषकर पृथ्वी से ऊपर वायु-मण्डल में ले जाते है। समुद्र के जल से भाप को शोषकर मेघों को बनाते है। मेघों की अलग अलग बूँदे बनाकर बरसाते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और तारों के प्रकाश व तेज को पृथ्वी में पहुँचाते है। पृथ्वी को दैनिक और वार्षिक गति में घुमाते है।

मनुष्य, हाथी, घोड़े, गाय, भैंस आदि समस्त पिण्डजों का साँस लेना, स्पर्श करना, चलना और शब्द सुनना ; गरुड़, हंस, कौवे आदि अण्डजों का उड़ना और वृक्षों का सांस लेना उसी वायु से होता है।

मिट्टी-पहाड़ आदि खुश्की के बारह हिस्से जिनसे पृथ्वी का ठोस रूप बना है, वे पृथ्वी के वायु, अग्नि और जल के आधार है। यदि पृथ्वी का ठोस स्वरूप न होता तो तमाम समुद्र को वायु शोषकर मेघों की तरह वायुमण्डल मे ले जाता।

पृथ्वी के ठोस आधार में समुद्र व नदियों का जल, पृथ्वी का वायु और पृथ्वी का अग्नि सुरक्षित हैं।

स्थलचर, जलचर और नभचर जीवधारी व तमाम वनस्पतियाँ इसी ठोस आधार पर रहते हैं। पृथ्वी का यह ठोस स्वरूप (मिट्टी-पहाड आदि) जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी के तमाम चराचर का आधार है।

जल, अग्नि, वायु और मिट्टी-पहाड आदि के संयोग से यह विस्तरित पृथ्वी बनी है। जिस पर हम हैं और जिसमें सब स्थावर, जंगम व समस्त जड-चेतन टिके हुए हैं।

पृथ्वी के सत्त्व, रज और तम त्रिगुण भेद होते हैं। उसके सत्त्वगुण से गन्ध, रजोगुण से मिट्टी-पहाड़ और तमोगुण से छाया बनती है। जितनी भी गन्धें होती हैं वे सब पृथ्वी-तत्त्व में रहती हैं। वनस्पतियों के पुष्प अपने आहार के साथ गन्धों को पृथ्वी से लेते हैं। पृथ्वी की गन्ध पुष्पों में अनेक भेदों से उत्पन्न होकर महकती है।

प्राणियों के शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के सत्त्वगुण से घ्राण उत्पन्न होता है। इसलिये प्राणियों को सब प्रकार की गन्धों का ज्ञान घ्राण से होता है।

पृथ्वी के रजोगुण से मिट्टी-पहाड़ आदि पार्थव्य तत्त्व उत्पन्न होता है। वह जैसे प्रथम कीचड़ के रूप में बनता है, वैसे ही प्राणियों के शरीर में पार्थव्य तत्त्व से प्रथम गुदा बनता है।

गुदा से धीरे-धीरे आँते, मांस, हड्डियाँ, नाखून, बाल और दाँत बनते हैं।

पृथ्वीतत्त्व के तमोगुण से छाया बनती है, जो रात्रि में पृथ्वी को ढकती है। उसमें नेत्रों को पृथ्वी पर के पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता। प्राणियों के शारीरिक पृथ्वीतत्त्व के तमोगुण से निद्रा उत्पन्न होती है। जिससे निद्रा में प्राणियों को कोई ज्ञान नहीं रहता।

छाया आकाश, वायु, अग्नि और जल में नहीं होती। छाया पृथ्वीतत्त्व में आती है। जल से भी छाया तभी पैदा होगी जब वह जमकर पार्थिव्य गुण धारण करता है। इसलिये जब जल से सूक्ष्म भाप आकाश मे उड़ती है तब उससे छाया नही होती और जब वह आकाश में शीत पाने से जमकर मेघ के अणु बन जाते हैं अथवा उसमे पार्थिव्य गुण आ जाता है, तब मेघों के समूह से छाया होती है। यदि जल मे छाया आती तो भाप से भी छाया उत्पन्न होती।

पृथ्वी बनी कहाँ है? वह आकाश में बनी है। पृथ्वी का आधार आकाश है। पृथ्वी ठीक इस तरह आकाश में अपनी चालों से घूम रही है, जिस तरह उड़ते हुए पतंग को हम आकाश में भ्रमण करते हुए देखते हैं। पतंग आकाश मे पृथ्वी की नियत चालों की तरह नहीं घूमता। पृथ्वी दैनिक और वार्षिक दो नियत चालों मे घूम रही है।

यदि हम पृथ्वी से इतने बड़े होते कि जितने बड़े पतंग से

हैं और इस पृथ्वी को छोड़कर दूसरी पृथ्वी में खड़े होते तो ठीक पतंग की तरह इस पृथ्वी को भी आकाश में उसकी चालों से घूमते हुए देखते। लेकिन हम पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी से बहुत छोटे हैं। इसलिये पृथ्वी को आकाश में घूमते हुए नहीं देख सकते। पृथ्वी के जिस हिस्से पर हम बसे हैं, उसके चारों ओर पृथ्वी के अलावा हम क्या देखते हैं ? चारों ओर आकाश ही आकाश देखते हैं। इसी तरह पृथ्वी के सब ओर आकाश के सिवाय कुछ नहीं है।

पृथ्वी की ऊपरी सतह के तीन हिस्सों में समुद्र, एक हिस्से में हिम और एक हिस्सा खुश्की स्वतंत्र है। घुमाव के कारण पृथ्वी का गोल आकार बन गया। किन्तु वायु और जल की तरंगों के संघर्षण से और पहाड़ों की ऊँचाई, नदियों की गहराई और उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों की चपटाई होने के कारण पृथ्वी की वास्तविक शक्ल गोल कद्दू के आकार की तरह है।

पृथ्वी जब आरम्भ में जलाकार थी तब वायु और सूर्य के कारण उसके बाहरी आकार का जल सूखकर खुश्की का प्रथम भाग सुमेरु (हिमालय) पहाड़ उत्पन्न हुआ। फिर वायु के शोषण और सूर्य के तेज के योग से हिमालय पहाड़ के पश्चात् जल धीरे धीरे सूखकर समस्त खुश्की का भाग उत्पन्न हुआ।

वर्तमान समय में खुश्की का जितना भाग पृथ्वी में दिखाई

देता है, वह यकायक उत्पन्न नहीं हुआ। जल क्रमशः सूखता गया और खुश्की का भाग उत्पन्न होता गया। पृथ्वी की ऊपरी सतह में जितना शेप जल रहा उससे समुद्र बने हैं। महाप्रलय तक जल का वह समुद्री भाग भी सूखते सूखते विनाश हो जाता है।

पृथ्वी की गोलाई २५,००० मील है। वह आकाश में उत्तर से दक्षिण को लटकी हुई है। इसका लटकाव आकाश में किसी त्रिभुज के ६६ अंश कोणवाले कर्ण की तरह है। वह लगातार अपनी कीली पर दैनिक चाल से पश्चिम से पूर्व को और वार्षिक गति मे अपने क्रान्तिवृत में दक्षिण से उत्तर को घूम रही है। वह अपनी दैनिक और वार्षिक गति में बिलकुल धीमी चाल से घूम रही है। इतनी धीमी घूम रही है, जितना हम दैनिक और वार्षिक गति में सूर्य को घूमते हुए समझते हैं। वह पृथ्वी की वास्तविक चाल है।

२६ हिस्से वायु के जो पृथ्वी को गतिमय बनाये हुए हैं वे भी पृथ्वी की गति के साथ गतिमय बने रहते हैं। उनका विस्तार पृथ्वी से बहुत दूर आकाश तक है। वहाँ तक वायुमण्डल भी पृथ्वी की चाल के समान वेगवान् बना रहता है।

पृथ्वी के एक दैनिक चक्र के घुमाव से एक दिन और रात्रि होती है और वार्षिक गति के एक चक्कर के घुमाव में एक उत्तरायण और एक दक्षिणायन होती है।

अध्याय—१६

सूर्य और पृथ्वी

सूर्य पृथ्वी से पहिले उत्पन्न हुआ। वह आकाश में एक बहुत बड़ा अग्नि का गोला है। उसके समीप हजारों योजन तक अत्यन्त तेज के प्रभाव से कोई पिण्ड नही है। सूर्य पृथ्वी से बहुत बड़ा है। आकाश में उसका विस्तार बहुत विस्तृत है।

सूर्य का तेज और प्रकाश जितनी दूरी तक हमारी पृथ्वी मे पहुँच रहा है, उतनी ही दूर तक उसका तेज और प्रकाश अपने सब ओर के पिण्डों में पहुँच रहा है। सूर्य से तपनेवाले सब पिण्ड उससे समान दूरी पर नही है।

सूर्य अपने स्थान मे बड़ी तेजी से घूम रहा है। उसकी शक्ल गेंद की तरह गोल है। तेज घूमने के कारण वह पृथ्वी आदि अपने समीपी पिण्डो मे तेज और प्रकाश बड़ी सुगमता से पहुँचा रहा है। सूर्य से प्रकाश और तेज पहुँचाने का कार्य पिण्डों मे सूर्य और पिण्डों के मध्यस्थ वायुमण्डल से होता है।

सूर्य से पृथ्वी ६८००००००० मील की दूरी पर है। सूर्य की ओर से पृथ्वी को सूर्य का प्रबल आकर्षण खींचता है और वायु की ओर से उसको वायु का बल खींचता है। इन दोनों

प्रबल शक्तियों के खिचाव के कारण पृथ्वी अपने स्थान में सूर्य और वायु की ओर घूमने लगी। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सम्मुख होता है, उसमें सूर्य का तेज और प्रकाश पहुँचने से दिन होने लगा, और पृथ्वी का जो भाग सूर्य के विमुख रहा उसमें अतेज और अप्रकाश होने से अन्धकार व रात्रि होने लगी।

इसी तरह पृथ्वी बराबर दिन रात के चक्कर में घूमने लगी और उसमें दिन रात होने लगे। पृथिवी दिन रात के चक्कर में सूर्य की ओर से वायु की ओर घूम रही है। यद्यपि पृथ्वी से सूर्य की ओर भी वायु है, किन्तु वहाँ सूर्य के प्रभाव से वायु का बल न्यून होता है और सूर्य का बल अधिक होता है। जैसे दिन मे सूर्य के प्रभाव से चन्द्रमा का प्रकाश मलीन हो जाता है और सूर्य के विमुख रात्रि को उसका प्रकाश बलवान् होता है, इसी तरह सूर्य के विमुख पृथिवी की दूसरी ओर वायु का अधिक बल होता है और सूर्य की ओर सूर्य का अधिक बल होता। इन दोनों बलों के खिचाव से पृथ्वी दिन रात के चक्कर मे घूम रही है।

इस तरह पृथ्वी के घूमने से सूर्य नित्य सबेरे पूर्व से उदय और शाम को पश्चिम में छिपते दिखाई देता है। सूर्य पूर्व से उदय और पश्चिम में डूबते दिखाई देने का कारण पृथ्वी का दैनिक चक्कर में घूमने का है। जो सूर्य का घुमाव मालूम होता है, वह पृथ्वी का है। पृथ्वी के घुमाव के कारण

सूर्य का घुमाव मालूम होता है। वास्तविक उस चाल से पृथ्वी घूम रही है, सूर्य नहीं। सिर्फ वह अपने नियत स्थान मे बड़ी तेजी से घूम रहा है।

पृथ्वी दिन रात के चक्कर में घूमने के अतिरिक्त, वायु के प्रबल धक्कों और सूर्य के आकर्षण से वार्षिक गति मे नियमित चाल से एक वृत्ताकार मार्ग मे बराबर सूर्य के गृह घूम रही है। सूर्य से पृथ्वी ९८०००००० मील की दूरी पर उसके गिर्द समानान्तर वृत्त मे घूम रही है। पृथ्वी वार्पिक गति मे सूर्य के गिर्द घूमने से ३६० अंश का वृत्त बनाती है। उसको पृथ्वी का क्रान्तिवृत्त कहते है।

९८०००००० मील जो सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थ की दूरी है वह पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त का पूर्ण अर्द्धव्यास नहीं। सूर्य के मध्य विन्दु से अर्द्धव्यास की दूरी ९९७११११ मील है। क्रान्तिवृत्त का पूर्ण व्यास १९९४२२२२२ मील है।

जिस वृत्ताकार आकाश मार्ग मे सूर्य्य के गिर्द पृथिवी भ्रमण कर रही है, उस क्रान्तवृत्त की परिधि ६२६७५५५५५ मील है।

पृथिवी एक दिन रात में क्रान्तिवृत्त का एक अंश के लगभग चलकर समाप्त करती है। क्रान्तिवृत्त के एक अंश की दूरी १७४०९८९ मील है।

पृथिवी एक पूरे दिन रात व ६० घड़ी में क्रान्तिवृत्त पर १७१७१३९ मील चलती है। वह एक घड़ी व ६० पल में

क्रान्तिवृत्त पर एक कला से कुछ कम चलती है। ६० कला का एक अंश होता है।

क्रान्तिवृत्त के एक कला की दूरी २६०१६ मील है। और एक पल मे एक विकला चलती है। उसके एक विकला की दूरी ४८४ मील है। एक विपल मे एक न्यून-विकला चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की दूरी ८ मील है।

पृथ्वी जितने समय मे क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की यात्रा करती है, उसको एक विपल कहते हैं। एक विपल में पृथिवी क्रान्तिवृत्त में ८ मील चलती है। अर्थात् क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की दूरी ८ मील है। ६० न्यून-विकला की १ विकला होती है।

पृथ्वी जितने समय में क्रान्तिवृत्त पर एक विकला की यात्रा करती है, उसको एक पल कहते हैं। एक पल में पृथिवी ४७७ मील चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक विकला को दूरी ४८४ मील है। ६० विकला की एक कला होती है।

पृथिवी जितने समय मे क्रान्तिवृत्त के एक कला की यात्रा करती है, उसको एक घड़ी कहते है। एक घड़ी से पृथ्वी क्रान्तिवृत्त में २८६१९ मील चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक कला की दूरी २६०१६ मील है। ६० कला का एक अंश होता है।

पृथ्वी जितने समय में क्रान्तिवृत्त के एक अंश की यात्रा करती है, उसको एक दिन कहते हैं। एक दिन में पृथ्वी क्रान्ति-

वृत्त के १७१७१३६ मील यात्रा तै करती है, अर्थात् १ अंश के लगभग चलती है।

उतने ही समय में पृथवी को परिधि सूर्य के सम्मुख से सूर्य के विमुख अर्थात् पश्चिम से पूर्व को एक चक्कर घूमती है। पृथ्वी वार्षिक चक्र में क्रान्तिवृत्त के एक अंश की यात्रा तै करने पर दैनिक गति से दिन रात के चक्कर में अपनी परिधि का एक पूर्ण चक्कर घूमती है। उस चक्कर से पृथ्वी मे एक दिन और एक रात होती है।

क्रान्तिवृत्त का घेरा ३६० अंश का है। पृथवी ३६५$\frac{1}{4}$ दिन मे वार्षिक गति से क्रान्तिवृत्त मे घूमकर सूर्य की पूरी प्रदक्षिणा करती है। उसको एक वर्ष कहते हैं।

पृथ्वी वार्षिक गति मे घूमनेवाली चाल से सूर्य की एक पूरी प्रदक्षिणा करने पर पश्चिम से पूर्व, दैनिक गति घूमनेवाली चाल से ३६५$\frac{1}{4}$ चक्कर घूमती है। जिसमें ३६५ दिन और ३६५ रात होती है। पृथ्वी की वार्षिक और दैनिक चालों से उसका काल-विभाग बना है।

पृथ्वी आकाश में सूर्य के गिर्द वार्षिक गति मे दक्षिण से उत्तर को एक परिमित मार्ग में घूम रही है। पृथ्वी को उस मार्ग में बारह राशियों के सम्मुख होना पड़ता है। क्रान्तिवृत्त के ३०,३० अंश यात्रा करने पर पृथ्वी प्रत्येक राशि से विशेष सम्बन्ध रखती है।

सूर्य की एक पूरी प्रदक्षिणा करने पर पृथ्वी को बारह

राशियों के क्रान्तिवृत्तों का भोग करना पड़ता है। वही बारह माह माने जाते है।

पृथ्वी के घुमाव से जैसे जैसे राशियों का परिवर्तन होता है, वही ऋतुओं का परिवर्तन है। १२ राशियों की ६ ऋतु होती है।

पृथ्वी क्रान्तिवृत्त मे नित्य चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर इन छ ग्रहों के साथ सूर्य के गिर्द घूम रही है। वह पश्चिम से पूर्व घूमनेवाली चाल से प्रतिदिन प्रत्येक ग्रह से विशेष सम्बन्धित होकर सूर्य के गिर्द घूमती है। पृथ्वी जिस दिन जिस ग्रह से विशेष सम्बन्ध रखती है, उसी ग्रह के नाम से पृथ्वी में वह दिन माना जाता है। सातवे दिन पृथ्वी अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य से ही विशेष सम्ब्रन्ध रखती है। इसलिये वह दिन पृथ्वी में सूर्य के नाम से होता है।

जैसे चन्द्रवार को पृथ्वी चन्द्रमा से विशेष सम्बन्धित होने पर वह दिन पृथ्वी में चन्द्रमा के नाम से माना जाता है। इसी तरह प्रतिदिन मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर ग्रहों से पृथ्वी विशेप सम्बन्धित होने से, उसमें मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर दिन होते हैं। सातवें दिन पृथ्वी अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य से विशेप सम्बन्धित होती है। इसलिये वह दिन पृथ्वी में सूर्य के नाम से होता है।

पृथ्वी इसी तरह दैनिक गति में सूर्य के गिर्द घूमने से और अन्य ६ पिण्डों से विशेप सम्बन्धित होने पर उसमें लगातार

सात दिन—चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर और रविवार होते हैं।

दैनिक और वार्षिक गति मे घूमने के कारण वायु के प्रवल धक्कों से पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी भाग चपटे हो गये। उनको उत्तरी दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। दैनिक और वार्षिक गति मे घूमने के कारण पृथ्वी की वास्तविक शक्ल गोल कद्दू की तरह है। सूर्य्य की तरह वह बिलकुल गोल नहीं है। इसलिये पृथ्वी के सब भाग प्रत्येक मौसम मे सूर्य के सम्मुख बराबर नहीं तपते। पृथ्वी कद्दू-आकार होने से किसी मौसम मे उसका कोई आधे से अधिक हिस्सा किसी मौसम मे समान भाग और किसी मे न्यून भाग सूर्य के सम्मुख तपते है।

पृथ्वी अपनी गोलाई के हिसाब से क्रान्तिवृत्त मे घूमते हुए सूर्य के सम्मुख दो तरह से तपती है। इस तरह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के मध्यस्थ पृथ्वी के दो बराबर अर्द्धभाग होते हैं। अर्थात् उत्तरी ध्रुव की ओर उत्तरी भाग और दक्षिणी ध्रुव की ओर दक्षिणी भाग।

अर्द्ध पौष के चार दिन पहले से पृथिवी का उत्तरी भाग सूर्य के सम्मुख तपना आरम्भ होता है और दक्षिणी भाग में सूर्य का अस्त सा होता है। और अर्द्ध पौष के चार दिन पहले से अर्द्ध आषाढ़ के ५ दिन पहले तक पृथिवी का उत्तरी भाग क्रमशः अधिक सूर्य के सम्मुख झुकता रहता है। इसलिये माह पौष मध्य के चार दिन पहले से और आषाढ़

मध्य के ५ दिन पहिले तक पृथ्वी के उत्तरी भाग मे दिन और गर्मी क्रमशः अधिक बढ़ते रहते है। इन छः महीनों में उत्तरी ध्रुव जो चपटा है, उसमें दिन बना रहता है।

जिस तरह पृथिवी के दैनिक चक्कर मे घूमने से उसके अर्द्ध भाग में एकाएक दिन और एकाएक रात्रि नहीं होती। क्रमशः दिन होता है और क्रमशः रात्रि होती है। अर्थात् पृथिवी के जिस हिस्से मे हम हैं, माना कि उसमें सबेरे ६ बजे सूर्य निकला, तिस पर भी ७ बजे तक अधिक ठंड रहती है। ८ बजे अधिक से कुछ कम, ९ बजे ठंड और गर्मी की समानता होती है, १० बजे गर्मी कुछ अधिक, ११ बजे विशेष और १२ बजे गर्मी की हद हो जाती है।

किन्तु रात्रि को पृथिवी मे अधिक ठंड समाने से १२ बजे भी पृथिवी मे उतनी गर्मी मालूम नही होती जितनी कि १२ बजे से २ बजे तक होती है। यद्यपि १२ बजे के उपरान्त सूर्य की गर्मी पृथिवी मे कम पड़ती है। लेकिन सबेरे ६ बजे से १२ बजे दिन तक सूर्य की गर्मी पृथिवी में समाती रहती है। उस के उपरान्त २ बजे तक पृथिवी मे समाई हुई गर्मी और सूर्य की गर्मी का योग होने से १२ बजे के मुकाबिले अधिक गर्मी मालूम होती है। फिर २ बजे से शाम ६ बजे तक क्रमशः गर्मी न्यून और ठण्ड अधिक बढ़ती है १२, बजे के उपरान्त ६ बजे तक भी दिन बना रहता है और ६ बजे शाम से १२ बजे रात तक और ६ बजे सबेरे तक रात्रि बनी रहती है।

इसी तरह पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी भागों में ६ माह का उत्तरायण और ६ माह का दक्षिणायन होता है। माह पौप के मध्य के ४ दिन पहले से और आषाढ़ के मध्य के ५ दिन पहले तक पृथ्वी का उत्तरी भाग क्रमशः अधिक सूर्य के सम्मुख तपता रहता है। ६ बजे सबेरे की तरह पौष का महीना है।

यद्यपि ६ बजे सबेरे सूर्य उदय होता है लेकिन पृथ्वी मे ठण्ड बनी रहती है। वैसे ही अर्द्ध पोष के ४ दिन पहले से पृथिवी का उत्तरी ध्रुव भाग का झुकाव सूर्य के सम्मुख हो जाता है। लेकिन उस महीने मे पृथ्वी के उत्तरी भाग मे ठण्डक बनी रहती है।

गर्मी और सर्दी के सम्बन्ध से माघ ७ बजे सबेरे की तरह, फागुन ८ बजे सबेरे की, चैत्र ६ बजे की, वैशाख १० बजे की, ज्येष्ठ ११ बजे की और आषाढ़ का महीना १२ बजे दिन की तरह है। इन महीनों में पृथ्वी का उत्तरी भाग धीरे धीरे क्रमश. सूर्य की ओर झुकने से अधिक तपता है, और दिन भी क्रमशः बढ़ते रहते हैं। इन ६ महीनों में पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव जो चपटा है, उसमें दिन बना रहता है।

माह आषाढ़ के मध्य के ४ दिन पहिले से पृथ्वी के दक्षिणी भाग का झुकाव सूर्य के सम्मुख होना आरम्भ होता है और क्रमशः माह अर्द्ध पौप के ५ दिन पहले तक अधिक होता रहता है।

१२ बजे से २ बजे दिन की तरह पृथ्वी के दक्षिणी भाग का झुकाव सूर्य की ओर होने पर भी पृथ्वी के उत्तरी भाग में माह श्रावण और भाद्रपद में गर्मी अधिक होती है, क्योंकि माह माघ से आषाढ़ तक पृथ्वी के उत्तरी भाग में गर्मी समाती है। उस समाई हुई गर्मी और सूर्य की गर्मी के योग से पृथ्वी के उत्तरी भाग मे माह श्रावण और भाद्रपद में अधिक गर्मी मालूम होती है। माह असूज, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और पौष ३, ४, ५ और ६ बजे शाम की तरह है।

माह पौष मे पृथ्वी के उत्तरी भाग में सूर्य की बहुत कम गर्मी पहुँचती है जिससे वहाँ ठण्डक की हद हो जाती है, और दिन भी बिलकुल छोटे हो जाते है। माह श्रावण से माह पौष तक इन ६ महीनों में पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव जो चपटा है, उसमें रात्रि होती है।

माघ के आरम्भ से और आषाढ़ के अन्त तक पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव भाग का झुकाव सूर्य के सम्मुख होने से उत्तरायण और श्रावण के आरम्भ से माह पौष तक पृथ्वी के दक्षिणी ध्रुव का झुकाव सूर्य के सम्मुख होने से दक्षिणायन माना जाता है।

अध्याय—१७

सोम

संसार की सारी उत्पत्ति और विनाश मे पॉच तत्त्व की प्रधानता मानी गई है। जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं। इनके अतिरिक्त संसार की उत्पत्ति और विनाश में सोम भी एक प्रधान कारण है। सोम एक छठा तत्त्व माना जा सकता है। वह अग्नि और जल के सत्वगुणों के योग से उत्पन्न हुआ। उसकी बनावट मे तीन भाग अग्नि का सत्वगुण-प्रकाश और दो भाग जल का सत्वगुण रस है। सोम प्रकाश और रस के योग से बना है। जिस तरह आकाश का गुण शब्द है, वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का गुण रूप, जल का गुण रस और पृथ्वी का गुण गन्ध है, उसी तरह सोम का गुण शीत है।

आकाश मे सोम एक ऐसे ढग का पिण्ड है, जो सूर्य से प्रकाश खींचता है। जिसको वह पृथ्वी तक पहुँचाता है, किन्तु तेज नही खीचता। पृथ्वी से चन्द्रमा मे जो प्रकाश दिखाई देता है, वह उसके और सूर्य के प्रकाश के योग से उत्पन्न होता है।

सोम बिलकुल गोल पिण्ड है, जिसको हम चन्द्रमा कहते

हैं। वह बहुत बड़ा पिण्ड है। उसमें भी दिन रात होने का क्रम जारी है। वह अपने क्रान्तिवृत्त में पृथ्वी से बारहगुना अधिक चलता है।

चन्द्रमा एक दिन मे अपने क्रान्तिवृत्त के बारह अंश चलकर तै करता है। चन्द्रमा अपने क्रान्विृत्त में ठीक २७½ दिन में एक पूरा चक्कर घूमता है। लेकिन तिथियों के सम्बन्ध से पृथ्वी में चन्द्रमा का घुमाव ३० दिन का मालूम होता है। जिससे १५ तिथियाँ शुक्लपक्ष की और १५ तिथयाँ कृष्ण पक्ष की होती हैं।

पूर्णमासी को चन्द्रमा के दिन का पूर्ण हिस्सा पृथ्वी की ओर होता है। उस दिन वह पृथ्वी पर अधिक आकर्षण डालता है। जिससे वह अपने आकर्षण से समुद्र का जल खींचकर वायुमण्डल की ओर बढ़ाता है जिसको ज्वार कहते है।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक प्रतिदिन चन्द्रमा के दिन का पन्द्रहवाँ भाग पृथ्वी की ओर होता है और होते होते पूर्णमासी को चन्द्रमा का पूर्ण दिन पृथ्वी की रात्रि की ओर हो जाता है। पूर्णमासी को पृथ्वी की रात्रि में चन्द्रमा सब दिन से अधिक प्रकाश पहुँचाता है, क्योंकि उसका प्रकाशवाला पूर्ण हिस्सा उस दिन पृथ्वी की ओर हो जाता है।

फिर पृथ्वी और चन्द्रमा के घुमाव से पूर्णमासी से आमावस्या तक चन्द्रमा की रात्रि का पन्द्रहवाँ भाग पृथ्वी की ओर होता रहता है। यहाँ तक कि आमावस्या को चन्द्रमा की रात्रिवाला पूर्ण हिस्सा पृथ्वी की ओर हो जाता है।

पृथ्वी और चन्द्रमा के घुमाव के कारण किसी पक्ष में चन्द्रमा प्रतिपदा को और किसी पक्ष में द्वितीया को दिखाई देता है। प्रतिपदा और द्वितीया को चन्द्रमा को देखने में अन्तर इसलिये पड़ता है कि चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के १८ अंश सूर्य के प्रकाश से आच्छादित होते हैं।

चन्द्रमा के घुमाव से पृथ्वी में १५ दिन का शुक्ल पक्ष और १५ दिन का कृष्ण पक्ष लगातार होते रहते हैं। जिन दिनों चन्द्रमा का दिनवाला हिस्सा पृथ्वी की ओर प्रकाशित होता रहता है, उसको शुक्ल पक्ष कहते हैं और जिन दिनों पृथ्वी की ओर चन्द्रमा का रात्रिवाला हिस्सा होता रहता है उसको कृष्ण पक्ष कहते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में पिण्डों की जितनी तीव्र गतियाँ होती हैं, वही चाल उनकी सदैव नहीं रहती। उत्पत्ति से जितना अधिक अधिक समय होता रहता है उतना ही पिण्डों की गतियाँ भी कुछ शिथिल होती जाती हैं। यही कारण है कि १५ दिन का शुक्ल पक्ष और १५ दिन का कृष्ण पक्ष होता है।

पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है और चन्द्रमा एक वर्ष में अपने क्रान्तिवृत्त में बारह परिक्रमा करता है। चन्द्रमा की उन १२ परिक्रमाओं से पृथ्वी में १२ शुक्ल पक्ष और १२ कृष्ण पक्ष होते हैं।

सोम के भी सत्त्व, रज, तम त्रिगुण भेद होते हैं। उसके सत्त्वगुण से सोमरस पैदा होता है। जो वनस्पतियों में जीवों

का पोषण करनेवाला रस और बीजों में उत्पादन शक्ति बनता है। सोम के रजोगुण से चौदह तिथियाँ और प्रत्येक तिथि के चन्द्रविम्बों से चौदह प्रकार के पराग पैदा होते हैं और तमोगुण से शीत पैदा होती है।

समस्त वनस्पतियों की उत्पत्ति सोम के परागों से होती है। परागों का विस्तृत वर्णन वनस्पति अध्याय में किया जायगा।

शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा मे जैसे जैसे प्रकाश की कलाएँ बढ़ती है, वैसे ही वैसे चन्द्रमा मे सोमरस भी बढ़ता है। पृथ्वी पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। शुक्ल पक्ष में जो समुद्र का जल बढ़ता है, उसका सोमरस भी एक विशेष कारण है। क्योंकि जैसे जैसे चन्द्रमा में सोमरस बढ़ता है, वैसे ही वैसे समुद्र के जल मे भी रस की वृद्धि होती है। उन दिनों वनस्पतियों और बीजों में भी सोमरस की वृद्धि होती है। सोमरस मे सूक्ष्म मीठापन होता है। चन्द्रमा की प्रकाश-कलाओं की वृद्धि के साथ साथ वनस्पतियों और बीजों में उस रस की वृद्धि होती है। उसका ज्ञान मनुष्यों की रसनाओं से नहीं हो सकता। वनस्पतियों और बीजों में रहनेवाले कीटकों की रसनाओं से होता है। इसलिये शुक्ल पक्ष में काटे हुए बीज और लकड़ियों पर उस मीठे रस के कारण प्रायः कीड़ियाँ लगती है।

लेकिन कृष्ण पक्ष में जैसे जैसे चन्द्रविम्ब की प्रकाशकलाओं

को अन्धकार ढकता रहता है, वैसे ही वैसे सोमरस के स्थान में एक तरह का सूक्ष्म जहरीला रस बढ़ता जाता है। उन दिनों बीजों और वनस्पतियों में भी उस रस की वृद्धि होती है। उस रस में सूक्ष्मता से कड़वापन होता है। इसलिये कृष्ण पक्ष में काटे हुए बीजों और वनस्पतियों में कड़वा रस रह जाता है। उसका ज्ञान भी मनुष्यों की रसनाओं से नहीं हो सकता, केवल उन्हीं कीड़ियों की रसनाओं से हो सकता है। इसी से कृष्ण पक्ष में काटे हुए बीजों और लकड़ियों पर उस कड़वे रस के कारण कीड़ियाँ नहीं लगती है।

दिन और रात्रि के सम्बन्ध से भी सोमरस घटता बढ़ता रहता है। प्रायः फल अधिकतर रात्रि में पकते हैं। इसका कारण यह है कि रात्रि को सोम का अधिक बल होने से फलों को अधिक सोमरस मिलता है।

जिस तरह दिन में सूर्य का पृथ्वी पर अधिक प्रभाव पड़ता है, उसी तरह पृथ्वी में रात्रि को सोम का अधिक प्रभाव पड़ता है।

सोम के रजोगुण से पराग पैदा होते हैं। जिससे बीजों में अंकुरित शक्ति बनी रहती है।

वनस्पतियों की जड़े गर्भ केशर से और अंकुरवाला सारा ऊपर का हिस्सा पराग से उत्पन्न होता है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की १४ तिथियों के १४ चन्द्रबिम्बों से मुख्य १४ प्रकार के पराग पैदा होते हैं। उन्हीं से बीजों में उत्पादन

शक्ति बनी रहती है। जिससे वनस्पतियों की उत्पत्ति होती है। जिन बीजों में जैसे पराग होते हैं वे चन्द्रमा, जल-वायु और पृथ्वी से वैसे ही रस लेते है। परागों में अपने-अपने रस लेने की शक्तियाँ होती है। चन्द्रमा और वनस्पतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहता है।

माता के सर्वांग से जैसे स्तनों में दूध जमा होकर उससे बच्चों का पोपण होता है, वैसे ही विश्व के सर्वांग से चन्द्रमा में सोमरस एकत्रित होकर वह वायु, जल और पृथ्वी द्वारा वनस्पतियों में उतरता है, जिससे प्राणियों का पोषण होता है। शुक्र की शक्ति के विना जैसे स्तनों में दूध नहीं बन सकता, वैसे ही सूर्य की शक्ति के विना चन्द्रमा में सोमरस की प्राप्ति नहीं हो सकती। विश्व में सूर्य शुक्र के समान और चन्द्रमा रज के समान है।

सोम के तमोगुण से शीत पैदा होता है। जल, वायु, पृथ्वी में जो शीत समाता है, वह उनको सोम से ही प्राप्त होता है। जल, वायु, पृथ्वी का स्वभाव न शीतल और न उष्ण है। उनको शीत सोम से और तेज सूर्य व अग्नि से प्राप्त होता है।

शीत की प्रधानता और तेज की न्यूनता से वायु, जल और पृथ्वी में शीत की अधिकता मालूम होती है। और तेज की प्रधानता और शीत की न्यूनता से उनमें उष्णता मालूम होती है।

जिस तरह सूर्य से पृथ्वी में चेतनता, प्रकाश और तेज

पहुँचता है, उसी तरह चन्द्रमा से पृथ्वी में सोमरस, पराग, शीत और प्रकाश पहुँचता है।

जो लोग अग्नि के अभाव से शीत को मानते हैं। यह सिद्धान्त अनुकूल नही है, क्योंकि जब तक किसी वस्तु के प्रतिकूल मुकाबला करनेवाली दूसरी वस्तु नहीं होती, तब तक उसका अभाव कैसे हो सकता है। यह प्रकृति का अटल नियम है। इस सिद्धान्त से तेज का अभाव कैसे हो सकता है, जब कि सृष्टि के आद्य काल से सूर्य प्रतिदिन तेज प्रदान करता चला आ रहा है। इससे तो यह होना चाहिये था कि तेज के प्रतिदिन क्रमशः एकत्रित होने से अब तक सृष्टि को अति तप्त होना चाहिये था। लेकिन ऐसा नही है। इससे यह सिद्ध है कि शीत अग्नि के अभाव से पैदा नहीं होता, वह स्वयं है। सिर्फ तेज की न्यूनता से उसका बल बढ़ता है और उसकी न्यूनता से तेज का बल बढ़ता है।

तेज की तरह शीत का भी कोई ख़ास स्थान है, जिस तरह सूर्य को महाचैतन्य पुरुप से तेज प्राप्त होकर वह भूमण्डल को तप्त करता है, उसी तरह सोम को महाप्रकृति से शीत प्राप्त होकर वह भूमण्डल को शीतल करता है। जिस तरह सूर्य का तेज पृथ्वी पर आने से ऊष्ण दाहक शक्ति बनता है, ठीक उसी तरह चन्द्रमा-से शीत पृथ्वी, जल और वायु में उतरकर ठंडी दाहक शक्ति बनता है। चन्द्रमा में मनोहर शीतलता होती है। शीत-दाहक शक्ति नही होती।

यदि सोम से पृथ्वी में शीत न पहुँचता, तो सूर्य के तेज से पृथ्वी भस्म हो जाती और उसमें न कोई जीव-जन्तु पैदा हो सकते और न वनस्पतियाँ उग सकतीं। सोम शीत द्वारा सूर्य के तेज से पृथ्वी व उसके जीव-जन्तु और वनस्पतियों की रक्षा करता है।

जाड़ों में जल, वायु, पृथ्वी में चन्द्रमा से अधिक शीत समाने पर वे शीतल और गर्मियों में सूर्य का अधिक तेज मिलने से वे उष्ण होते है।

विश्व में चन्द्रमा बड़ा लाभकारी पिण्ड है।

अध्याय—१८

राहु और केतु

हमारे सूर्य-मण्डल मे दो ऐसे ग्रह हैं, जिनने अन्धकार बना रहता है। वे अन्य पिण्डों की तरह आकाश में दिखाई नहीं देते। वे दोनों पिण्ड पृथ्वी के तमोगुण से उत्पन्न हुए और दोनों पृथ्वी से समान दूरी पर पृथ्वी के दोनों ओर समान चाल से उसके गिर्द घूम रहे है।

उनमे एक पिण्ड गोलाकार और दूसरा मुद्गराकार व मूली आकार का है। गोल पिण्ड को राहु और मूली-आकार पिण्ड को केतु कहते है। वे दोनों पिण्ड पृथ्वी से १५ गुना छोटे है। राहु से केतु लम्बाई के कारण कुछ लम्बा है। राहु की परिधि केतु के सिर की परिधि से कुछ अधिक है। केतु कभी-कभी प्रकाशित होकर पृथ्वी से दिखाई देता।

आकाश मे पृथ्वी और अन्य पिण्ड अपनी-अपनी चालों के घुमाव से जब ऐसे सम्बन्ध मे होते हैं कि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपने-अपने आकर्षणों से खींचते है, तब उस समय केतु ग्रह अपनी घुमाव की चाल से पृथ्वी और दूसरे पिण्डों के आकर्षणों के मध्यस्थ होने से उसमें एक तरह का नवीन आकर्षण पैदा होता है, और वह अपने और उस आकर्षण के

योग से उस समय सूर्य का प्रकाश खींचने को समर्थ होता है। उस समय केतु ग्रह पृथ्वी से पुच्छल तारा रूप में दिखाई देता है।

पिण्डों के आकर्षण-लड़ाई के समय केतु ग्रह आकाश मे प्रकाशित होकर दुर्भिक्षों की सूचना करता है। राहु और केतु से पृथ्वी को एक बड़ा लाभ होता है। पृथ्वी के साथ अन्य पिण्डों की आकर्षण-लड़ाई के समय वे आकर्षणों के बीच होकर पृथ्वी और अन्य पिण्डों के आकर्षण की जुदाई करते है, और उनको टकराने से बचाते है। लेकिन उस समय पृथ्वी मे उल्कापात होते है, क्योंकि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड के कमजोर हिस्सों को अपने आकर्षण से अपने ऊपर खींच लेते है।

राहु और केतु दोनों पिण्ड प्रत्येक समय अपनी अपनी चालों से पृथ्वी के दोनों ओर रहकर अन्य पिण्डों से पृथ्वी की रक्षा करते है और अन्य पिण्डों के आकर्षणों से पृथिवी को उनके साथ टकराने से बचाते हैं। वे दोनों पिण्ड पृथ्वी के दोनों ओर रहकर एक दूसरे से समान दूरी पर घूम रहे है।

अक्सर पूर्णमासी को चन्द्रमा पृथ्वी पर अपना अधिक आकर्षण डालता है। पूर्णमासी को चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी मे समुद्र का पानी अपनी सीमा से ऊपर उठ जाता है। लेकिन पूर्णमासी को राहु अथवा केतु दो मे से एक ग्रह पृथ्वी

और चन्द्रमा के मध्यस्थ होकर पृथ्वी और चन्द्रमा को उनके आकर्षणो की टक्करों से बचाता है।

पूर्णमासी को राहु अथवा केतु मे से एक पिण्ड पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच और दूसरा पिण्ड पृथ्वी और सूर्य के मध्य रहता है। अमावास्या को चन्द्रमा सूर्य की ओर होता है। उस दिन राहु वा केतु दो में से एक ग्रह पृथ्वी और सूर्य के मध्य हो जाता है और दूसरा पिण्ड पृथ्वी के जिस ओर पूर्णमासी को होता है उस ओर रहता है।

अमावास्या को चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी पर नहीं पड़ता, क्योंकि आमावास्या को पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य राहु अथवा केतु के सिवाय सूर्य हो जाता है, जिससे चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी पर नहीं पहुँचता। इसलिये अमावास्या को समुद्र का जल पृथ्वी के आकर्षण से नीचे घट जाता है।

चन्द्रमा अपने क्रान्तिवृत्त मे और राहु व केतु अपने क्रान्तिवृत्त मे अपनी-अपनी चालों से घूम रहे है। अक्सर पूर्णमासी को चन्द्रमा, राहु, पृथ्वी, केतु, सूर्य, पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के एक अंश की सीध मे होते है और फिर अमावास्या को केतु, पृथ्वी, राहु, सूर्य्य, चन्द्रमा एक अंश की सीध में हो जाते हैं। पृथ्वी से ग्रहों की चाल को सिद्ध करने के लिये पृथ्वी का क्रान्तिवृत्त निश्चित किया जाता है और उसी के अंश, कला, विकला से ही सम्बन्ध रखा जाता है।

प्रत्येक पूर्णमासी और प्रत्येक अमावास्या को पृथ्वी और

चन्द्रमा, सूर्य्य के गिर्द अपनी-अपनी चालों के घुमाव से और बड़े-बड़े पिण्ड होने के कारण नित्य एक अंश, एक कला, एक विकला की सीध में हो जाते हैं। किन्तु राहु व केतु प्रत्येक पूर्णमासी व अमावास्या को पृथ्वी चन्द्रमा और पृथ्वी सूर्य के साथ पृथ्वी के गिर्द घूमने से और बहुत छोटे पिण्ड होने के कारण एक अंश, एक कला, एक विकला की सीध में नहीं हो सकते।

जब चन्द्रमा राहु अथवा केतु और पृथ्वी का रात्रिवाला हिस्सा पूर्णमासी को एक अंश, एक कला, एक विकला में अपनी अपनी चालों से हो जाते है, तब उस पूर्णमासी को पृथ्वी का रात्रिवाला हिस्सा और चन्द्रमा के मध्यस्थ राहु अथवा केतु ग्रह के आने से चन्द्रमा का सारा विम्ब अथवा विम्ब का कुछ हिस्सा पृथ्वी से आच्छादित मालूम होता है, उसको चन्द्रग्रहण कहते हैं।

इसी तरह जब अमावास्या को पृथ्वी का दिनवाला हिस्सा राहु अथवा केतु सूर्य और चन्द्रमा एक अंश, एक कला, एक विकला मे हो जाते है, तब सूर्य का पूर्ण विम्ब व विम्ब का कुछ हिस्सा राहु अथवा केतु से कुछ समय के लिये पृथ्वी से आच्छादित मालूम होता है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है।

यदि पूर्णमासी के दिन को और अमावास्या की रात्रि को चन्द्रमा राहु अथवा केतु और पृथ्वी, अथवा पृथ्वी राहु व केतु

और सूर्य एक अंश, एक कला, एक विकला मे हो जाये तो भी चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण नहीं हो सकते।

राहु और केतु ये दोनों ग्रह पृथ्वी के गिर्द घूमते हैं। वे दोनों ग्रह पृथ्वी के दोनों ओर पृथ्वी से २४००० मील की दूरी पर हैं। राहु विलकुल गोलपिण्ड और केतु मूली-आकार है। राहु के विम्ब का घेरा और केतु के सिरे का घेरा करीव-करीव बरावर है। उनके विम्वो का घेरा करीव-करीव १७१२ मील है। केतु लम्बाई में वहुत लम्बा है लेकिन राहु की गोलाई केतु की गोलाई से अधिक है।

केतु का सिर उसके क्रान्तिवृत्त मे पृथ्वी की ओर और पूछ दूसरे पिण्डो की ओर रहता है। राहु और केतु के क्रान्तिवृत्त का घेरा १७५८५६ मील है। वे दोनों पिण्ड अपने-अपने मार्गों मे समान चाल से एक दूसरे से समान दूरी पर चलते हैं। दोनों पिण्ड अपनी-अपनी चालों से ३३ दिन मे अपने क्रान्तिवृत्त में घूमकर पृथ्वी की एक पूरी प्रदक्षिणा करते हैं।

चन्द्रमा अपने क्रान्तिवृत्त मे जिस चाल के सम्बन्ध से घूम रहा है, उसी तरह राहु और केतु अपने क्रान्तिवृत्त मे पृथ्वी के गिर्द घूम रहे है। प्रत्येक पूर्णमासी को चन्द्रमा राहु, पृथ्वी, केतु और सूर्य एक अंश मे नही होते।

जिस पूर्णमासी को एक अंश के भिन्न-भिन्न स्थानों मे चन्द्रमा, राहु अथवा केतु और पृथ्वी रहते है, उस पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण नहीं हो सकता। इसी तरह प्रत्येक अमावास्या

को भी सूर्यग्रहण नहीं हो सकता। कभी-कभी पूर्णमासी और अमावास्या को राहु और केतु, सूर्य पृथ्वी चंद्रमा के साथ एक ही अंश पर नहीं रहते, कुछ आगे पीछे हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक पूर्णमासी और प्रत्येक अमावास्या को चन्द्र-ग्रहण अं र सूर्यग्रहण नहीं हो सकते।

सूर्यग्रहण तभी हो सकता है, जब अमावास्या को पृथ्वी, केतु अथवा राहु और सूर्य चन्द्रमा एक अंश, एक कला, एक विकला में हो जाते है। पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के एक विकला की दूरी ४८४ मील है और राहु व केतु के विम्ब का घेरा १७१२ मील है।

इसलिये अमावास्या को पृथ्वी का जो भाग क्रान्तिवृत्त के एक विकला में होगा, केतु भी उसी विकला में होगा और सूर्य भी उसी विकला मे होगा और पृथ्वी के उस हिस्से में अमावास्या का दिन होगा। तब पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के उस विकला मे रहनेवाले भाग से सूर्यग्रहण दिखाई देगा। उस काल मे केतु, पृथ्वी और सूर्य के मध्यस्थ एक अंश, एक कला और एक विकला मे होने से सूर्य का जितना हिस्सा केतु के विम्ब से आच्छादित दिखाई देता है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। पृथ्वी और केतु के घुमाव से जितना समय उनके अलग होने में लगता है, उतने समय तक सूर्यग्रहण रहता है।

पृथ्वी से केतु कभी-कभी गोलपिण्ड की सूरत में दिखाई देता है, और उस समय दिखाई देता है जब उसकी पूँछ पृथ्वी

से सीधी दूसरे पिण्डों की ओर हो जाती है। उस समय वह पृथ्वी से बिलकुल गोल दिखाई देता है। यदि उसके पूरे बिम्ब से सूर्य आच्छादित हो जाय, तो ग्रहण का आकार गोल दिखाई देगा। और यदि सूर्य के आधे बिम्ब पर केतु का बिम्ब पड़े अथवा केतु का अर्द्ध बिम्ब सूर्य के बिम्ब पर पड़े तो ग्रहण अर्द्ध वृत्ताकार दिखाई देगा। यदि अमावास्या को केतु, पृथ्वी और सूर्य के मध्य रहेगा तो राहु पृथ्वी की दूसरी ओर रहेगा।

विशेपतया सूर्यग्रहण का कारण केतु और चन्द्रग्रहण का कारण राहु होता है।

पूर्णमासी को भी चन्द्रग्रहण तभी होगा, जब चन्द्रमा, राहु और पृथ्वी एक अंश, एक कला और एक विकला की सीध मे होंगे।

पृथ्वी का वह भाग जो क्रान्तिवृत्त के एक अंश, एक कला, एक विकला में रहे, यदि उसमें पूर्णमासी की रात्रि हो और पृथ्वी के उस भाग के और चन्द्रमा के मध्यस्थ एक अंश, एक कला और एक विकला में राहु हो तो चन्द्रग्रहण होगा।

अब शंका यह है कि सूर्य और चन्द्रमा बडे बडे पिण्ड हैं और राहु व केतु के बिम्ब छोटे है। इसलिये राहु और केतु के इतने छोटे बिम्बों से चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के दिन कभी कभी चन्द्रमा और सूर्य के बिम्ब कैसे आच्छादित हो जाते है।

यह उदाहरण सर्वत्र सिद्ध है कि समीपवाली छोटी वस्तु से भी दूर की बड़ी वस्तु आच्छादित हो जाती है।

कई एक वैज्ञानिकों के मतानुसार चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द घूमता है। अमावास्या को चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के मध्यस्थ होने से सूर्य को आच्छादन करता है। इसलिए अमावास्या को सूर्य ग्रहण होता है।

वैसे ही पूर्णमासी को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यस्थ पृथ्वी के होने से पृथ्वी की छाया चन्द्रमा को आच्छादित कर पूर्ण-मासी को चन्द्रग्रहण होना बताते हैं।

परन्तु ये सिद्धान्त ग़लत हैं। क्योंकि यदि पूर्णमासी को पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के ऊपर पड़ती तो चन्द्रमा का नित्य पृथ्वी से बराबर दूरी पर घूमने के कारण प्रत्येक पूर्णमासी को पृथ्वी की छाया अपनी नियत मर्यादा तक पहुँचने से चन्द्रमा को आच्छादन कर चन्द्रग्रहण होता, और प्रत्येक पूर्ण-मासी को एक ही तरह का ग्रहण होता, किसी पूर्णमासी को अर्द्ध वृत्ताकार और किसी को पूर्णवृत्ताकार नहीं होता।

क्योंकि पृथ्वी की छाया प्रत्येक पूर्णमासी को अपनी नियत मर्यादा तक पहुँचती और चन्द्रमा नित्य पृथ्वी के गिर्द अपनी समान चाल से समान दूरी पर घूमता होता। इसलिये यह बात बिलकुल सिद्ध होती कि प्रत्येक पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण होता और नित्य एक ही शक्ल का ग्रहण होता। वह कभी गोल और कभी अर्द्ध गोल शक्ल में नहीं होता।

वैसे ही अमावास्या को जब चन्द्रमा के आच्छादन से सूर्य-ग्रहण माना जाय तो वह भी असम्भव है। क्योंकि ग्रहण के दिन ग्रहण को देखने से मालूम होता है कि यदि अधिक से अधिक समय तक ग्रहण रहा तो दो वा चार घण्टे तक रह सकता है। फिर सूर्य और आच्छादन करनेवाले पिण्ड की जुदाई हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि यदि चन्द्रमा से सूर्य आच्छादित होता तो अधिक से अधिक सात वा आठ घण्टे में चन्द्रमा की सूर्य से जुदाई होने पर, अमावास्या को पृथ्वी से चन्द्रमा दिखाई देना चाहिए था क्योंकि चन्द्रमा की सूर्य से जुदाई हो जाती है। लेकिन ऐसा नही होता। अमावास्या के आरम्भ से चन्द्रमा कम से कम २४ घण्टे में पृथ्वी से दिखाई देता है। यदि अमावास्या को २४ घण्टे तक चन्द्रमा सूर्य के साथ रहता है और सूर्य की कान्ति से चन्द्रमा कान्ति-हीन होने से नही दिखाई देता तो प्रत्येक अमावास्या को सूर्यग्रहण कम से कम २४ घण्टे का होता, लेकिन ऐसा भी नहीं होता।

इसलिये चन्द्रमा न पृथ्वी का उपग्रह है, न पृथ्वी के गिर्द घूमता है। एवं न सूर्यग्रहण का कारण चन्द्रमा है और न चन्द्रग्रहण का कारण पृथ्वी की छाया है।

जिन विद्वानो ने चन्द्रमा को पृथ्वी का उपग्रह मानकर सूर्यग्रहण और चन्द्रमा को सिद्ध किया है, उन्होंने राहु और केतु की चालों को चन्द्रमा की चाल माना है। क्योंकि चन्द्रमा और

राहु व केतु अपने अपने क्रान्तिवृत्तों में क़रीब क़रीब एक ही सम्बन्ध से विपरीत घूम रहे हैं।

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का नियत समय सिद्ध करने के लिये व ग्रहों की चाल को समझने के लिये पृथ्वी को स्थिर मानना पड़ता है और पृथ्वी का क्रान्तिवृत्त निश्चित किया जाता है। गणित में पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के अंश, कला और विकला को मानना पड़ता है। क्योंकि ग्रहों के क्रान्तिवृत्त भिन्न भिन्न हैं और सब ग्रह एक ही क्रान्तिवृत्त में नहीं घूम रहे हैं।

अध्याय—१६

पिण्डों का परस्पर सम्बन्ध

आकाश मे हमारे सूर्य की तरह अनेक सूर्य बने। हमारी पृथ्वी की तरह अनेक ठोस पिण्ड बने और कितने ही जल के पिण्ड बने। उन पिण्डों में अनगिनत पिण्ड हमारे सूर्य और पृथ्वी से बड़े और कितने ही उनसे छोटे है। समस्त महा-आकाश में असंख्य सूर्य और असंख्य अन्य पिण्ड उत्पन्न हुए। एक सूर्य जितने पिण्डों पर, तेज व प्रकाश डाल सका उतने पिण्ड एक सूर्य के शासन मे हो गये। उनका नाम एक ब्रह्माण्ड कहा गया। इसी तरह अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए।

सूर्य महातेज पुञ्ज पिण्ड है। वह अपने स्थान मे बड़ी तेजी से घूम रहा है। सूर्य के प्रबल आकर्षण से उसके समीपी पिण्डों का खिचाव उसकी ओर होने लगा और वायु अपने बल के प्रभाव से पिण्डों को दूसरी ओर खींचने लगा। लेकिन पृथ्वी आदि पिण्ड अपने बल के प्रभाव से आकाश मे एक नियत स्थान मे सूर्य की ओर से वायु की ओर घूमने लगे। इस क्रम से पृथ्वी के एक अर्धभाग को सूर्य अपनी ओर खींचता है और वायु उसके दूसरे अर्धभाग को अपनी ओर। इसी तरह पृथ्वी आदि पिण्ड दिन रात के चक्कर में घूमने लगे।

पिण्डों का जो अर्धभाग सूर्य के सम्मुख हुआ उसमें प्रकाश व तेज पहुँचने से दिन हुआ। और दूसरी ओर के हिस्से में अप्रकाश व अतेज होने से अन्धकार व रात्रि हुई। इस तरह जितने छोटे बड़े पिण्ड महाकाश में हैं, उनकी परिधि के हिसाब से उनमें उतने ही छोटे बड़े दिन रात होने लगे।

वायु के प्रबल धक्कों से पिण्ड अपने अपने स्थानों में दिन रात के चक्करों में घूमने के अतिरिक्त वृत्ताकार सूर्य के गिर्द घूमने लगे। पिण्ड सूर्य के गिर्द घूमने से पक्ष, मास, ऋतु, साल बनने लगे और अतीत समय से पिण्ड अपने अपने क्रान्तिवृत्तों में घूमने से सवत्सर युग बनने लगे।

प्रत्येक पिण्ड भिन्न भिन्न चालों से सूर्य के गिर्द घूमने लगे। पिण्डों के छोटा बड़ा होने से उनकी चालों में अन्तर आने लगा। जिस समय एक पिण्ड में दिन होता है तो दूसरे पिण्ड मे रात्रि होने लगी। कभी एक पिण्ड मे दिन होता है तो दूसरे पिण्ड में भी दिन हो जाता है और कभी एक पिण्ड में रात्रि होती है तो दूसरे पिण्डों में भी रात्रि हो जाती है। पिण्डों का तेजी से घूमने के कारण उनका गोल आकार बन गया। कभी-कभी एक पिण्ड दूसरे पिण्ड के अर्द्ध गोल से छिप जाता है। इस क्रम से सब पिण्डों व पृथ्वी मे दिन रात होने लगे।

जब सूर्य पृथ्वी के अर्द्ध गोल हिस्से में छिप जाता है, तब पृथ्वी के उस हिस्से में दिन होता है जिसके सम्मुख सूर्य

होता है। और जिस हिस्से से सूर्य छिपा है उसमें रात्रि होती है। अर्थात् पृथ्वी के जिस अर्द्ध गोल भाग में पृथ्वी की छाया पड़ती है, उसमें रात्रि होती है।

पृथ्वी दिन रात के चक्कर में घूमने से और वृत्ताकार सूर्य के गिर्द घूमने की चाल से, अर्थात् दैनिक और वार्षिक चालों के घूमने से उसमें कभी दिन बड़ा, कभी रात्रि बड़ी, कभी दिन छोटा, कभी रात्रि छोटी और कभी दिन रात बराबर होते हैं।

जब पृथ्वी अपना वार्षिक चाल के घुमाव से अपना अधिक अर्द्ध भाग सूर्य के सम्मुख ले जाती है, तब पृथ्वी के उस अधिक हिस्से में सूर्य के सम्मुख होने से अधिक गर्मी मालूम होती है। पृथ्वी के उस अधिक हिस्से को सूर्य से विमुख होने मे अथवा सूर्य से छिपने मे भी अधिक समय लगता है। इसलिये उस मौसम मे दिन बड़े होते हैं और उन दिनों में गर्मी अधिक होती है। लेकिन उस मौसम मे पृथ्वी के दूसरे न्यून अर्द्ध भाग में रात्रि छोटी होती है और उस मौसम मे उस भाग में तेज भी कम समाता है।

फिर पृथ्वी दैनिक और वार्षिक चालों के घुमाव से उस का कमतीवाला गोलार्द्ध सूर्य के सामने होता है। कमती होने के कारण पृथ्वी का वह हिस्सा सूर्य के सामने से जल्दी छिप जाता है। इसलिये उस हिस्से में उन दिनों सूर्य का तेज कमती समाता है और दिन भी छोटे होते हैं। उन दिनों

पृथ्वी के गोलार्द्ध में रात्रि बड़ी होती है। यही कारण है कि उस मौसम में पृथ्वी के उस गोलार्द्ध में दिन छोटे होते हैं और उसमें गर्मी कम पड़ती है।

फिर पृथ्वी की चाल से पृथ्वी के ठीक अर्द्ध गोल हिस्से सूर्य के सामने हो जाते हैं। उस मौसम में पृथ्वी के दोनो गोलार्द्धों मे दिन रात बराबर होते हैं और सर्दी गर्मी भी समान होती है। इन्हीं चालों से पृथ्वी बराबर सूर्य के गिर्द घूम रही है।

पृथ्वी की तरह चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर आदि पिण्डों में भी इन चालों से सूर्य के गिर्द घूमने से दिन रात का क्रम जारी है। वे सब पिण्ड सूर्य के तेज और प्रकाश से प्रकाशित होते है। इन पिण्डों में भी पृथ्वी की तरह अपना तेज व प्रकाश इतना ज्यादा नहीं है कि वे अपने आप को सूर्य की सहायता के बिना प्रकाशित कर सकें। पिण्डों की चालों के घुमाव से उनका उदय अस्त होना भी होता है।

पृथ्वी की रात्रि का स्वभाव अन्धकारमय होने पर भी पूर्णमासी को पृथ्वी की रात्रि प्रकाशित होती है। इसका कारण यह है कि पूर्णमासी को पृथ्वी के अन्धकार (रात्रि) वाले हिस्से के सम्मुख चन्द्रमा के अर्द्धगोल मे दिन होता है। इसलिये चन्द्रमा के दिन का प्रकाश पृथ्वी की रात्रि के अन्धकार को आच्छादान कर प्रकाश डालता है।

पूर्णमासी को पृथ्वी के अर्द्ध गोल (हमारी प्रकाशित रात्रि) के सिवाय पृथ्वी के दूसरे अर्द्ध गोल रात्रिवाले भाग में भी प्रकाश

होता है, क्योंकि हमारी पूर्णगोलाकार पृथवी की ओर चन्द्रमा का अर्द्धगोलाकार दिनवाला हिस्सा होता है और चन्द्रमा का रात्रिवाला अन्धकार हिस्सा दूसरे पिण्डों की ओर होता है।

चन्द्रमा में जो प्रकाश है, वह केवल चन्द्रमा का ही प्रकाश नहीं है। वह चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश के योग से उत्पन्न होता है। अगर चन्द्रमा में अपना ही प्रकाश होता तो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की सब तिथियो मे पूर्णमासी की तरह चन्द्रमा के पूर्ण विम्ब पर प्रकाश होता। लेकिन यह नहीं होता। क्योंकि चन्द्रमा के अर्द्धगोल पर सूर्य के प्रकाश से प्रकाश उत्पन्न होता है। और अर्द्धगोल जो सूर्य के बिमुख रहता है उसमें सूर्य के प्रकाश के विना प्रकाश उत्पन्न नहीं होता। उसमें रात्रि बनी रहती है।

अमावास्या को चन्द्रमा की रात्रिवाला अर्धभाग पृथ्वी की दोनो अर्द्धगोल रात्रियों की ओर होता है इसलिये अमावास्या को चन्द्रमा पृथ्वी मे प्रकाश नही डाल सकता। अमावास्या के उपरांत प्रतिपदा की रात्रि को चन्द्रमा के दिन का पन्द्राहवाँ हिस्सा पृथ्वी की ओर प्रकाशित होता है, किन्तु सूर्य्य के साथ उदय अस्त होते से सूर्य्य के प्रकाश के कारण कभी कभी चन्द्रमा प्रतिपदा को दिखाई नही देता। इसी से कभी-कभी प्रतिपदा को चन्द्रमा अदृश्य रहता है।

प्रतिपदा से पूर्णमासी तक प्रतिदिन चन्द्रमा के दिन का पन्द्रहवाँ हिस्सा पृथ्वी की ओर प्रकाशित होता है। और, होते

होते पूर्णमासी के दिन पृथ्वी की रात्रि की ओर चन्द्रमा का पूर्ण दिनवाला हिस्सा हो जाता है।

फिर पूर्णमासी की प्रतिपदा से अमावास्या तक चन्द्रमा की रात्रि का पन्द्रहवाँ हिस्सा पृथ्वी को ओर होता है।

सूर्य के गिर्द घूमने में पृथ्वी और चन्द्रमा अपने अपने वृत्ताकार मार्गों में एक दूसरे के विपरीत घूमते है।

चन्द्रमा में १५ दिन का शुक्लपक्ष और १५ दिन का कृष्णपक्ष होता है। किन्तु पृथ्वी में ६ माह का शुक्लपक्ष-उत्तरायण और ६ माह का कृष्णपक्ष-दक्षिणायन होता है।

सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा के घुमाव की चालों से ही दिशाओं का ज्ञान होता है। पृथ्वी के सामने सूर्य के आने की ओर को पूर्व दिशा और पृथ्वी से सूर्य छिपने की ओर को पश्चिम दिशा कहा गया। पृथ्वी के अपने क्रान्तिवृत्त में उत्तरायण घूमने से उत्तर दिशा और दक्षिणायन घूमने से दक्षिण दिशा कहा गया। इस तरह दिशाओं का ज्ञान होता है।

मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर आदि पिण्ड भी पृथ्वी और चन्द्रमा की तरह दोनो चालों से सूर्य के गिर्द घूमनेवाले है। इनमें भी दिन रात होने का क्रम जारी है। ये सब पिण्ड सूर्य के तेज से प्रकाशित होते हैं। इनमें भी हमारी पृथ्वी की तरह सूर्य प्रकाश और तेज डालता है।

वे सब पिण्ड अपने अपने मार्गों में हमारी पृथ्वी से

बहुत दूर हैं। इसलिये पृथ्वी से बहुत छोटे दिखाई देते हैं। जिनको हम तारा व ग्रह कहते है। वे ग्रह कभी उदय और कभी अस्त होते हैं। पृथ्वी और उन ग्रहों की सूर्य के गिर्द घूमने की चालो से जब पृथ्वी की रात्रिवाले अर्धगोल के सम्मुख इन ग्रहों का दिनवाला अर्धगोल हिस्सा होता है तब उनके दिनवाला अर्धगोल हिस्सा चमचमाते तारा रूप मे पृथ्वी से दिखाई देता है। उस समय वे ग्रह उदय हुए माने जाते हैं।

और जब पृथ्वी के रात्रिवाले अर्धगोल के सम्मुख उन ग्रहों का भी रात्रिवाला अर्धगोल हिस्सा हो जाता है, तब अन्धकार होने से वे ग्रह पृथ्वी से दिखाई नहीं देते। या एक पिण्ड के अर्धगोल से जब दूसरा पिण्ड अदृश्य हो जाता है तब उस समय वे ग्रह अस्त हुए माने जाते हैं।

वृहस्पति और शुक्र ग्रहों मे कभी कभी तीन तीन माह तक पृथ्वी की रात्रि से रात्रि होती रहती है। या पृथ्वी के तीन तीन माह तक पृथ्वी की ओर वृहस्पति व शुक्र का रात्रिवाला हिस्सा होता है और दिनवाला अर्धगोल हिस्सा दूसरे पिण्डों की ओर होता है। और फिर सूर्य के गिर्द पृथ्वी, वृहस्पति, शुक्र इन ग्रहों के घुमाव की चालों से पृथ्वी की रात्रि से इन ग्रहों का दिनवाला हिस्सा हो जाता है। और फिर कभी पृथ्वी की अर्द्धरात्रि से इन पिण्डों का दिनवाला हिस्सा दिखाई देता है।

इसी तरह पृथ्वी, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर ये सब पिण्ड अपनी अपनी चालों से सूर्य के गिर्द

घूमते रहते हैं। इसी से कभी एक ग्रह के दिनवाले हिस्से की ओर दूसरे पिण्ड का रात्रिवाला हिस्सा होता है। कभी एक ग्रह के रात्रिवाले हिस्से के सम्मुख दूसरे पिण्ड का दिनवाला हिस्सा होता है। कभी एक ग्रह की रात्रि से दूसरे ग्रहों की रात्रि हो जाती है। और कभी एक पिण्ड के अर्द्धगोल से दूसरा पिण्ड छिप जाता है।

ये सब पिण्ड अपने अपने मार्गों में एक दूसरे से इतने दूर हैं कि घूमने पर एक दूसरे से कभी नहीं टकरा सकते। इन सब पिण्डों के अपनी अपनी चालों में घूमने के मार्ग, किसी के सूर्य से समीप है और किसी के सूर्य से दूर है। कोई पिण्ड बहुत बड़े है और कोई पिण्ड छोटे हैं। अपनी अपनी परिधि के हिसाब से इन सबमें दिन रात बड़े छोटे होते रहते है। इन सब पिण्डों की दोनो चालों का एक साथ घुमाव बड़ा कौतुकजनक है। मानो वे सब पिण्ड आकाश की क्रीड़ास्थली मे परस्पर मिलजुलकर खेल रहे हों।

कभी एक पिण्ड में दिन होता है, तो दूसरा पिण्ड उसके सम्मुख रात्रि करता है, कभी एक पिण्ड दूसरे पिण्ड से छिप जाता है। कभी एक पिण्ड सूर्य के उत्तर घूमता है, तो दूसरा दक्षिण घूमता है। वास्तविक इन सब पिण्डों मे परस्पर बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है।

सूर्य के प्रकाश, तेज, और आकर्षण के सिवाय इन सब पिण्डों मे भी प्रकाश, तेज और आकर्षण होता है। सब पिण्ड

परस्पर एक दूसरे से अपने अपने प्रकाश, तेज और आकर्षण का सम्बन्ध रखते हैं। इन सब पिण्डों में सूर्य के आकर्षण के अतिरिक्त अपना भी आकर्षण होता है। किन्तु सब पिण्डों मे बराबर नहीं होता, किसी मे ज्यादा और किसी मे कम होता है। हरेक पिण्डअपने अपने आकर्षणों से सूर्य का प्रकाश और तेज खींचने मे बड़ी सहायता पाते हैं।

जिस पिण्ड मे अपना जितना ज्यादा आकर्षण होता है, वह उतना ही ज्यादा सूर्य का तेज अपने ऊपर खींच सकता है। जिसमें जितना अधिक तेज होता है उसमे उतना ही अधिक आकर्षण होता है। और जो जितना छोटा ग्रह है, उसमे उतना ही कम तेज है। वह उतना ही कम सूर्य का तेज खींच सकता है। किन्तु जिस ग्रह को जितने तेज व प्रकाश की आवश्यकता है, उसमे उतना ही तेज व प्रकाश होता है। इसलिये हरेक पिण्ड में उनकी आवश्यकतानुसार तेज और प्रकाश की न्यूनाधिकता नही होती।

हमारी पृथ्वी में जिस तरह पञ्चतत्त्व हैं और उन तत्त्वों से स्थूल रूप मे पृथ्वी की समस्त प्राप्य वस्तु बनी हैं, उसी तरह सब ग्रहों मे तत्त्व हैं। और उन तत्त्वों से वहाँ की प्राप्त वस्तु बनी हैं।

हमारी पृथ्वी मे जिस तरह जीवधारी है और भिन्न भिन्न सूरत के है उसी तरह सब पिण्डों मे जीवधारी हैं और भिन्न भिन्न तरह के है।

हमारी पृथ्वी में जिस तरह पाँच तत्त्व बराबर नहीं है, उसी तरह अन्य ग्रहों में भी सब तत्त्व बराबर नहीं है। किसी ग्रह में कोई तत्त्व अधिक है और किसी में कोई तत्त्व कमती है। अथवा किसी ग्रह में सुख सम्बन्धी तत्त्व अधिक है; किसी में दुःख सम्बन्धी तत्त्व अधिक हैं, और किसी ग्रह मे सुख दुःख सम्बन्धी तत्त्व बराबर है।

जिन ग्रहों में सुख सम्बन्धी तत्त्व अधिक है, उन ग्रहो की वस्तु उन तत्त्वों से बनी हुई अधिक सुखदायी है। जिन ग्रहों मे दुःख सम्बन्धी तत्त्व अधिक है, उन तत्त्वों से बनी हुई उन ग्रहों की वस्तु अधिक दुखदायी हैं और जिन ग्रहों मे सुख दुःख सम्बन्धी तत्त्व बराबर हैं, उन ग्रहों में उन तत्त्वों से बनी हुई वस्तु सुख दुःख सम्बन्धी बराबर है।

जो पिण्ड जितने बड़े है, उनमे उतने ही बड़े दिन रात होते है। उन पिण्डों में उतना ही अधिक सुख सम्बन्धी तत्त्व व प्राप्य वस्तु है। और उन पिण्ड-निवासी जीवधारियों की आयु उसी सम्बन्ध से अधिक होती है। जो जितने छोटे पिण्ड हैं, उनमें उतने ही छोटे दिन रात होते हैं। उन पिण्डों में उतना ही अधिक दुःख सम्बन्धी तत्त्व व प्राप्य वस्तु है और उनपिण्ड-निवासी जीवधारियों की आयु उसी सम्बन्ध से न्यून होती है।

पृथ्वी, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, इन पिण्डों के अलावा हमारे सूर्यमण्डल में दो ग्रह और हैं जिनको राहु और केतु के नाम से कहते है। वे दोनो पिण्ड पृथ्वी के

गिर्द एक दूसरे से समानान्तर दूरी पर घूमते है और दोनो पृथ्वी के संरक्षक हैं। उनमें अपना तेज व प्रकाश बहुत कमती है और सूर्य के तेज व प्रकाश से भी वे अन्य पिण्डों की तरह प्रकाशित नहीं होते। उनमें अन्धकार बना रहता है। वे दोनों ग्रह अन्य ग्रहों के मुकाबले बहुत छोटे है और पृथ्वी से बहुत समीप है।

उन दोनो ग्रहो में दुःख सम्बन्धी तत्त्व व उन तत्त्वों से बनी हुई वहाँ की प्राप्य वस्तु विशेष दुःख सम्बन्धी है। अन्य ग्रहों की तरह इन ग्रहों में भी जीवधारी है।

राहु गोल पिण्ड है। केतु मुद्गराकार व मूली की शक्ल की तरह है। राहु से केतु में कुछ विशेष तेज होता है इसलिये वह कभी कभी प्रकाशित हो जाता है। और उससमय प्रकाशित होता है, जब पिण्ड अपने घुमाव की चालों से ऐसे सम्बन्ध में होते हैं कि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपने तेज और आकर्षण से एक दूसरे की ओर खींचने लगते है। पिण्डों के इस परस्पर तेज व आकर्षण के खींचातानी-युद्ध से एक दूसरा पिण्ड, एक दूसरे पिण्ड के कमज़ोर हिस्सों को अपने ऊपर खींच लेता है और उस समय विशेषतया वलवान् पिण्ड कमजोर पिण्ड के हिस्सों को खींचता है, जिससे पिण्डों मे उल्कापात होता है।

उस समय केतु ग्रह अपने घुमाव की चालों से उन ग्रहों के तेज व आकर्षण (बिजली) के बीच होने से अपने ऊपर

सूर्य का प्रकाश खींचने के लिए एक नवीन तेज प्राप्त कर लेता है।

अथवा पिण्डों के तेज के संयोग से और सूर्य के तेज से केतु ग्रह प्रकाशित होता है, उसको पुच्छलतारा भी कहते हैं। उस समय वह ग्रहों में दुर्भिक्ष और उल्कापात होने की सूचना देता है। किन्तु यह ग्रह अन्य ग्रहों की तरह केवल सूर्य के तेज से प्रकाशित नहीं हो सकता, वह तभी प्रकाशित हो सकता है, जब अन्य पिण्डों के तेज से तेजित होकर सूर्य का प्रकाश और तेज खींचने में समर्थ होता है। उसी समय वह पुच्छलतारा रूप में दिखाई देता है। ऐसा समय कभी कभी आता है क्योंकि ग्रहों का ऐसे सम्बन्ध में होना नियत नहीं है।

हमारे सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त आकाश में अनन्त सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड है, जिनको हम सप्तऋषि कहते है। वे भी एक सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड है। वह हमारे सूर्यमण्डल का समीपी ब्रह्माण्ड है। हमारे सूर्यमण्डल की तरह सप्तऋषि-मण्डल में ग्रह है। उसमें ८ ग्रह हैं। एक ध्रुवतारा और सात ग्रह सप्तऋषि तारों के नाम से कहे जाते है।

ध्रुवतारा उन सप्तग्रहों का सूर्य है। उसके तेज और प्रकाश से वे सप्तग्रह भी प्रकाशित होते है। हमारे सूर्य की तरह ध्रुवतारा भी एक बड़ा तेजोपुञ्ज प्रकाशमय सूर्य है। वह अपने नियत स्थान मे बड़ी तेजी से घूम रहा है। घूमने के कारण

वह अपने समीपी पिण्डों मे सुगमता से तेज व प्रकाश डाल सकता है ।

ध्रुवतारा हमारे सूर्यमण्डल से बहुत दूर है । परन्तु अपने अत्यन्त तेज व प्रकाश के कारण हमारी पृथ्वी तक दिखाई देता है । वह हमारे सूर्य की तरह अपने नियत स्थान पर है । इसलिये पृथ्वी से भी नित्य एक ही स्थान में दिखाई देता है । पृथ्वी से सूर्य के मुकाबले ध्रवतारा बहुत दूर है इसलिये पृथवी के घुमाव से वह सूर्य की तरह घूमता हुआ मालूम नहीं होता, अतः नियत स्थान मे दिखाई देता है । ध्रुवतारा से पृथ्वी ६६° अंश दक्षिण को लटकी हुई है ।

ध्रुवतारा अपने नियत स्थान पर घूमनेवाला एक बड़ा तेजोपुञ्ज, प्रकाशमय सूर्य है । वह अपने तेज और प्रकाश से सप्तऋषि पिण्डों पर प्रकाश व तेज डालता है और अपने तेज व आकर्षण से उन सब पिण्डों को अपनी ओर खींचे हुए रहता है । वे सातों पिण्ड ध्रुव सूर्य के गिर्द घूमते है ।

वे पिण्ड भी सब आपस मे बराबर नहीं है । एक दूसरे से एक दूसरे में छोटाई बड़ाई का अन्तर है । कोई पिण्ड ध्रुव सूर्य के ससीप है और कोई दूर हैं । सब पिण्ड अपने अपने मार्गों मे ध्रुव-सूर्य के गिर्द घूमते हैं और एक दूसरे से इतने भिन्न भिन्न दूर हैं कि अपने घुमाव से कोई पिण्ड किसी पिण्ड से टकरा नहीं सकते और न अन्य ब्रह्माण्ड व हमारे ब्रह्माण्ड के पिण्डों से टकरा सकते हैं ।

ध्रुवमण्डल के सप्तग्रहों मे तत्व व उन तत्त्वों से वनी हुई वहाँ की प्राप्य वस्तु होती है। उन सब पिण्डों में जीवधारी वसते है। किंतु सब पिण्डों में तत्त्व प्राप्त वस्तु और जीवधारी एक ही तरह के नहीं होते, पिण्डों के सम्वन्ध से उनमें भिन्नता होती है।

इसी तरह महाकाश मे अनन्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड है। वे सब एक दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर और सम्बन्ध रखते है। हम जितने तारे देखते है वे सब पिण्ड है और कई उन पिण्डों के सूर्य है। पिण्डों में कोई सूर्य की तरह अग्नि के गोले हैं और कोई पृथ्वी, चन्द्रमा, मंगल, वुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर की तरह है। शक्ल-आकार में वे सव पिण्ड एक से नहीं हैं, तरह तरह के है। कितने ही सूर्यादि पिण्ड गेद की तरह गोल है, पृथ्वी गोल कद्दू के आकार की है, केतु मूली के आकार का है। इसी तरह सव पिण्ड महाकाश में भिन्न भिन्न शक्ल के हैं।

ध्रुवतारा की तरह पृथ्वी से बहुत से तारे दिखाई देते हैं। वे तारे भी अपने अपने स्थानों मे घूमनेवाले सूर्य है और अपने समीपी पिण्डों में तेज व प्रकाश डालते है। वे पृथ्वी से वहुत दूर हैं। इसलिये वहुत छोटे दिखाई देते है। वहुत से पिण्ड पृथ्वी से इतने दूर हैं कि वे दिखाई भी नहीं देते।

महाआकाश के पिण्डों में कोई पिण्ड इतने वड़े वड़े है कि हमारी पृथ्वी की कितनी ही आयु होने तक उनमें एक दिन हो

सकता है, और हमारी पृथ्वी को कितनी ही आयु होने तक उनकी एक रात्रि हो सकती है। अथवा हमारी पृथ्वी का एक जन्म से दूसरे जन्म होने तक भी उन पिण्डों की परिधि का एक चक्कर घूम सकता है। अथवा उन पिण्डों में एक दिन और एक रात्रि हो सकती है। परन्तु वे पिण्ड पृथ्वी से इतने दूर है कि वे पृथ्वी से दिखाई भी नहीं देते या बहुत छोटे तारारूप में दिखाई देते है।

हम तारो को जितने छोटे देखते है वे उतने छोटे नहीं हैं। वे सब बड़े बड़े पिण्ड है। उन पिण्डों मे बहुत से उन पिण्डों के सूर्य हैं और बहुत से बड़े बड़े पिण्ड हैं। .

आकाश मे असंख्य पिण्ड होने पर भी उन सबका ऐसा अच्छा प्रबन्ध है कि वे अपने अपने क्रान्तिवृत्तों में घूमने पर एक दूसरे से नही टकराते। नित्य एक दूसरे से समानान्तर दूरी पर रहते है और सब एक दूसरे के आकर्षण पर टिके हैं। जिस तरह सूर्य अपने आकर्षण से अपने पिण्डों को अपनी ओर खींचे रहता है, उसी तरह एक ब्रह्माण्ड दूसरे ब्रह्माण्ड को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। आकाश में सब पिण्ड परस्पर एक दूसरे के आकर्षण मे अपने-अपने क्रान्तिवृत्त मार्गों में कार्य-प्रवृत्त है।

अध्याय—२०

स्थूल शरीर की उत्पत्ति और विनाश

प्राणियों के स्थूल शरीर की उत्पत्ति के मुख्य दो कारण हैं। पहिला पिता का शुक्र और दूसरा माता का रज। दोनों के योग से माता के गर्भ में स्थूल पाञ्चभौतिक शरीरवाले प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

शुक्र की एक अवस्था होती है। उसमें चैतन्य सत्ता, दिव्य स्वरूप और तेज होता है।

किन्तु माता के रज की परिवर्तनशील दो प्रकार की गतियाँ होती हैं और प्रत्येक गति में चौदह चौदह प्रकार की क्रियायें होती हैं। रज की एक प्रकार की गतिवाली चौदह क्रियाओं में उत्पादक शक्ति और दूसरे प्रकार की गतिवाली चौदह क्रियाओं में विनाशकृत शक्ति होती है। विनाशगति में रज पूर्ण तमोगुणयुक्त होने से ऋतुकाल में स्त्रियों की योनियो से विनाश व पतित हो जाता है।

रज में परिवर्तनशील गति, अतेज, विनाशी गुण और अन्धकार रहता है।

शुक्र में जो स्थूलपन होता है, उसमे भी पुरुष के शरीर-सम्बन्धी कुछ मायाकृत रज का पाञ्चभौतिक अंश होता है।

यदि शुक्र में मिला हुआ रज का मायाकृत भाग अलग किया जाय तो शुक्र में केवल चैतन्यता, दिव्यता, स्थिरता और तेज रह जाय।

वैसे ही स्त्रियों के शरीर को उत्पन्न करनेवाले शुक्र की पाञ्च-भौतिक सत्ता को उनके रज से पृथक् किया जाय तो रज में केवल अतेज, विनाश गुण और अन्धकार ही रह जाय।

जिसमें स्थिरता हो, तेजयुक्त—दिव्य स्वरूप हो और जिसमे चैतन्यता हो उसको सत्त्वगुण कहते है।

जिसमें बढ़ना-घटना आदि परिवर्तन-शील गति हो, जड़ हो, अन्धकारस्वरूप हो और विनाशकृत गुण हो, उसको तमोगुण कहते हैं।

स्मरण रहे! कि माता के रज मे तमोगुण होता है, जिसके कारण स्त्रियो की योनियो से ऋतुकाल मे रज पतित होता है। किन्तु उसके पश्चात् योनि में रज को विनाश करनेवाली क्रिया, उत्पादन क्रिया मे परिवर्तित हो जाती है। यदि स्त्रियों के शरीर को बनावट मे शुक्र का सत्त्वगुण अंश न होता तो रज की विनाशगति पूर्ण तमोगुण के पश्चात् उत्पादन क्रिया में परिवर्तित नही हो सकती।

विश्वविराट्-सृष्टि की उत्पति और विनाश मे महाप्रकृति के परिवर्तनशील तमोगुण के भी ठीक यही दो प्रकार के भेद होते हैं। रज और प्रकृति के क्रम में कोई अन्तर नहीं होता।

महाप्रकृति के उग्र तमोगुण से प्राकृतिक सृष्टि का विनाश

होता है। उसके पश्चात् वह चैतन्य की सत्ता से परिवर्तित होकर सृष्टि की उत्पत्ति के लिये उत्पादन क्रिया मे समर्थ होती है।

इसी तरह स्त्रियों के ऋतुकाल मे रज का विनाश होने पर योनि में रज की क्रिया नष्ट नहीं होती। बल्कि रज विनाश होने के पश्चात वह उत्पादन क्रिया में बदल जाती है। और चौहद दिन तक योनी मे उत्पादन क्रिया बनी रहती है उन्हीं चौदह दिनों के अन्दर शुक्र की सत्ता से स्त्रियों के गर्भ में गर्भाधान रहता है।

रज उत्पादन क्रिया के पश्चात् फिर विनाश गुण धारण करता है, जिससे वह अपनी गति के चौदह दिनों के अन्त में विनाश तमोगुण के कारण दो या तीन दिनों तक योनि से पतित होता रहता है। इसी तरह ठीक विश्वविराट् के चौदह लोकों की उत्पत्ति और विनाश मे महाप्रकृति की क्रियायें होती रहती है।

स्त्रियों की योनियो मे रज १४ दिन तक उत्पादन क्रिया मे और उसके पश्चात चौदह दिन तक विनाश क्रिया मे रहता है। रज उग्र तमोगुण से विनाश होता है। रज के विनाश व पतित होने के पश्चात् उग्र तमोगुण शान्त होता है और फिर स्त्रियों के योनियों मे रज की उत्पादन क्रियाशक्ति पैदा होती है।

इसी तरह स्त्रियों की योनियों मे रज का चक्र चन्द्रमा के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की १४ तिथियों की तरह व माला

के फेर की तरह बराबर घूमता रहता है। जब तक स्त्रियों की योनियों में रज का चक्र घूमता रहता है, तभी तक उनमें गर्भाधान की शक्ति बनी रहती है। लेकिन रज का माला के चक्र की तरह घुमावदार फेरा नहीं होता। योनि में रज के उत्पादन और विनाश तमोगुण क्रिया के दो भेद, चौदह-चौदह दिनों मे उन्हीं १४ स्थानों मे होते है, जिनको योनि-चौदह लोक भी कह सकते हैं। महाप्रकृति की योनि में भी चौदह ही लोक होते है, जिनके विस्तार में उत्पादन और विनाश होनेवाला अखिल विश्वविराट् उत्पन्न और नाश होता रहता है।

महाप्रकृति के उग्र तमोगुणी की विनाशी क्रिया से समस्त विश्वविराट् का नाश होता है। उसके पश्चात् उग्र तमोगुण शान्त होकर उसकी क्रिया चैतन्य की सत्ता में शेष सुरक्षित रह जाती है। वह फिर चैतन्य की सत्ता से उत्पादन गुण धारण कर प्रथम सत्यलोक की उत्पत्ति करती है। उसके पश्चात् क्रमशः तप आदि लोकों को उत्पन्न करते हुए भुवलोक की रचना तक प्रकृति का तमोगुण न्यून और चैतन्य की सत्ता से प्राप्त होनेवाला सत्त्वगुण अधिक होता है। भूलोक की रचना में दोनो गुण समान होते है। उसके पश्चात् अतललोक से पाताललोक तक की रचना मे तमोगुण इसी सम्बन्ध से अधिक होता रहता है। जिस सम्बन्ध से भूलोक से सत्यलोक की रचना में सत्त्वगुण अधिक होता है।

पाताललोक की रचना के पश्चात् महाप्रकृति में विनाशी

गुण आ जाता है और वह प्रथम पाताललोक का नाश करते हुए क्रमशः अन्तिम सत्यलोक का विनाश करता है।

किन्तु ऋतुकाल में रज, पतित होने के पश्चात् स्त्रियों की योनियों में उत्पादन क्रिया से प्रथम योनि-सत्यलोक उत्पन्न नहीं करता। मायाकृत शरीर के विकार से स्त्रियों की योनियों में प्रथम दिन पाताललोक की रचना होती है, दूसरे दिन रसातल की। इसी तरह क्रमशः प्रतिदिन महातल, तलातल, सुतल, वितल, अतल, भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक की रचना होती है। इसके पश्चात् स्त्रियों की योनियों में रज की विनाशक्रिया उत्पन्न हो जाती है।

योनि में रज की लोक-उत्पादन-क्रिया की उज्ज्वलता शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक प्रत्येक तिथि के चन्द्रबिम्ब की उज्ज्वलता के समान समझनी चाहिए। जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के चन्द्रबिम्ब में प्रकाश न्यून से न्यून और अन्धकार अधिक से अधिक होता है, और प्रतिपदा से लेकर प्रत्येक तिथि में प्रकाश का भाग बढ़ता है और अन्धकार का भाग घटता रहता है; लेकिन सप्तमी तक चन्द्रबिम्ब पर प्रकाश न्यून और अन्धकार अधिक रहता है। और इसके उपरान्त प्रकाश का भाग प्रतिदिन अधिक अधिक बढ़ता रहता है और अन्धकार घटता रहता है; यहाँ तक कि चतुर्दशी को चन्द्रबिम्ब में प्रकाश अधिक और अन्धकार न्यून से न्यून रह जाता है।

वैसे ही स्त्रियों के ऋतुकाल के पश्चात् उज्ज्वल रज और

तमोगुणी रज का भेद प्रतिदिन प्रथम दिन से १४ दिन तक होता रहता है। रज मे प्रथम दिन अन्धकार का अधिक अंश और उज्ज्वलता का न्यून अंश होता है। लेकिन प्रथम दिन से रज में उज्ज्वल अंश बढ़ता है, और अन्धकार-अंश न्यून होता रहता है। आठवें दिन रज मे उज्ज्वल अंश अन्धकार-अंश से अधिक हो जाता है। उसके उपरान्त अन्धकार-अंश न्यून और उज्ज्वल अश अधिक बढ़ता रहता है।

यहाँ पर मै कुछ वर्णो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहता हूँ। यदि स्त्रियो के ऋतुकाल के पश्चात् प्रथम दिन से तीन दिन तक स्त्रियों का गर्भाधान रहे तो वह सन्तति पैदा होने पर मलीनता, मूर्खता, अज्ञानतायुक्त होगी। यदि ४ दिन से ७ दिन के बीच गर्भाधान रहेगा तो वह सन्तति लोभी, चिन्तायुक्त और भीरु होगी। यदि आठवे दिन से ग्यारहवें दिन तक गर्भाधान रहे तो वह सन्तति शूरवीर, तेजस्वी और शासन की सत्ता जमानेवाली होगी। और यदि बारहवे दिन से चौदहवें दिन के अन्दर गर्भाधान रहेगा तो वह सन्तति परम बुद्धिमान, ज्ञानी, अग्रदर्शी और तत्त्वविज्ञान को जानने-वाली होगी।

इन दिनों मे भी प्रथम दिन के गर्भाधान की अपेक्षा तीसरे दिन की गर्भाधानवाली सन्तति मे अन्तर आ जाता है। वैसे चार दिन की गर्भाधानवाली और सात दिन की गर्भाधान-वाली सन्तति में अन्तर हो जाता है। वैसे ही आठ, ग्यारह,

बारह और चौदह दिन की गर्भाधानवाली सन्तति मे अन्तर पड़ जाता है। वास्तविक एक एक दिन के गर्भाधानवाली सन्तति में गुण, कर्म और स्वभाव का अन्तर होता है।

रज मे शुक्र प्रवेश होने के समय यदि शुक्र में सम्मिलित मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य रज के पञ्चभौतिक द्रव्य से अधिक बलिष्ठ हो तो मायाकृत शरीर में पुरुप की उत्पत्ति होती है। यदि शुक्र में सम्मिलित मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य, रज के मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य से न्यून बलिष्ठ हो तो मायाकृत (स्थूल) शरीर में स्त्री की उत्पत्ति होती है। और यदि शुक्र व रज का समान बल और समान भाग हो तो स्थूल शरीर में नपुंसक उत्पन्न होता है।

स्त्रियों की योनियो मे रज की उत्पादन क्रियावाली गति में जब शुक्र प्रवेश करता है, तब रज उसमें लिपटकर शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज की अज्ञान और विनाशी क्रिया ज्ञानमय होकर जाग्रत् हो जाती है, और विधिपूर्वक गर्भ में शारीरिक पिण्ड की रचना करती है। शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज की विनाशगति जागृति मे परिवर्तित होकर धीरे धीरे गर्भ मे शारीरिक पिंड बनने लगता है।

माता के पञ्चभौतिक शरीर के रस (रज) से वह पञ्च-भौतिक पिण्ड बनकर जाग्रत् अवस्था में बढ़ता रहता है।

स्त्रियों के गर्भ में ऋतुकाल में रज को बाहर प्रवाहित करने-

वाली एक नली होती है। उस नली का दूसरा भाग स्त्रियों के गर्भ मे वृक्ष की जड़ों के जाल की तरह फैला रहता है। गर्भ मे शुक्र उसी नली के पहिले भाग के मुँह द्वारा योनि के गर्भाशय में प्रवेश करता है। नली के दूसरी ओर वृक्ष की जड़ों की तरह जो जाल होता है, उसके द्वारा नली स्त्रियों के सर्वांग शरीर से रस लेकर गर्भ में बच्चों का शारीरिक पिण्ड बनता है। उसी नली की जड़ की सहायता से गर्भ मे बच्चों के शरीर का पोषण होता है। वह नली बच्चों के पेट में नाभि से लगी रहती है, जिसको नाल भी कहते है। गर्भ में उसी का दूसरा भाग वृक्ष की जड़ों की तरह स्त्रियों के गर्भाशय में फैला रहता है।

गर्भ में बच्चे का पञ्चभौतिक शरीर रज के उत्पादन और विनाश दोनों गतिवाले चौदह-चौदह क्रियाभेदों से उत्पन्न होता है। इसलिये बच्चे का शरीर गर्भ के चौदह लोक-विस्तार से बनता है। उसमे ज्ञानशक्ति, निर्णयशक्ति, विचार-शक्ति और इन्द्रियों द्वारा होनेवाली ज्ञान और क्रियाशक्ति शुक्र के सतोगुण से उपत्न्न होती हैं।

जब बच्चा गर्भ में परिपूर्ण जाग्रत् हो जाता है, तब उसकी नाभि मे जो नाल लगा होता है, उसके दूसरे भाग के हिस्से का सम्बन्ध जो गर्भ में वृक्ष की जड़ की तरह फैला होता है, गर्भ से विच्छेद हो जाता है और बच्चा गर्भ से निकलकर पैदा हो जाता है। फिर बच्चा जैसे गर्भ में रज की पोषण सत्ता से बढ़ता था, उसी तरह पञ्चभौतिक दूध आदि खाद्य पदार्थों से

बाहर भी उसका शरीर बढ़ता रहता है, और बढ़ते-बढ़ते पूर्ण जवानी तक बढ़ता है। जवानी के उपरान्त पञ्चभौतिक शरीर में तमोगुण सत्त्वगुण से कुछ अधिक हो जाता है और तमोगुण बढ़ते-बढ़ते जब शरीर में उग्र रूप धारण करता है, तब प्राणियों की मृत्यु हो जाती है।

पहिले वर्णन हो चुका है कि शुक्र में जो चैतन्य सत्ता है, उसकी नित्य एक गति होती है। रज की जो दो प्रकार की गतियाँ होती हैं, अर्थात् उत्पादन और विनाश, उन दोनों का परिवर्तन होता है।

रज उत्पादन गति से परिवर्तित होकर विनाश की ओर और विनाश गति से परिवर्तित होकर उत्पादन की ओर होता रहता है। उन दोनों गतियों के अलग-अलग नाम स्थिति और प्रलय कह सकते हैं।

प्रकृति के उत्पादन-क्रिया भेद को जिसका नाम विद्या-रूप प्रकृति भी है, स्थिति कहते है। उसमें उत्पादनशक्ति होती है। प्रकृति के परिवर्तन शील तमोगुण को काल कहते है, जो मायाकृत स्थिति का परिवर्तन कर प्रलय अथवा विनाश की ओर ले जाता है।

स्थितियों में जहाँ काल अपना उग्र तमोगुण धारण करता है, वहाँ मरण अथवा प्रलय होता है।

माता के गर्भ में जहाँ प्राणियों के मायाकृत पञ्चभौतिक शरीर की स्थिति होती है, वहाँ शुक्र के सत्त्वगुण से रज में

चेतनता उत्पन्न होती है और उस अवस्था में रज की तमोगुण शक्ति उत्पादनयुक्त बन जाती है।

फिर माता के गर्भ में प्राणियों का स्थूल पञ्चभौतिक शरीर रज की उत्पादन और विनाश दोनों प्रकार की गतियों के योग से बनने लगता है।

उत्पादन रज मे शुक्र संयुक्त होकर उसकी चैतन्य सत्ता से प्राणियों के शरीर मे जागृति आती है। रज की विनाश-क्रिया के साधारण तमोगुण से प्राणियों के शरीर में निद्रा पैदा होती है। रज की जो दो प्रकार की गतियाँ उत्पादन और विनाश योनि मे होती थी, वे प्राणियों के शरीर को जाग्रत् और निद्रा दो अवस्थाओं में बराबर परिवर्तित करती रहती हैं।

प्राणियो की शरीर-स्थिति मे इन दोनों अवस्थाओं का संग्राम बराबर बना रहता है। दोनों अवस्थाओं का तमोगुण प्राणियो के मायाकृत शरीर को विनाश की ओर बराबर परिवर्तित करता रहता है।

प्राणियो के शरीर में जब तक शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज का तमोगुण न्यून रहता है, तब तक वे पोषित होते हुए बढ़ते रहते है।

जब रज की उत्पादन क्रिया का तमोगुण शुक्र के सत्त्वगुण से अधिक बढ़ जाता है, तब शरीर का बढ़ना बंद होकर उपरान्त क्रमशः शरीर का शोषण होने लगता है, जिससे पञ्चभौतिक

शरीर की इन्द्रियाँ जरा और रुग्णावस्था में बल-हीन होती रहती है।

जब प्राणियों के शरीर में उत्पादन तमोगुण से विनाश-तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब प्राणियों के मायाकृत स्थूल पञ्चभौतिक शरीर का मरण होता है।

मृत्यु में स्थूल पञ्चभौतिक शरीर जड़त्व को प्राप्त होकर उसमें समाया हुआ जो उग्र विनाशकारी तमोगुण होता है, वह मृतक शरीर के तत्त्वों को अपने विशेष उग्र तमोगुण से विच्छिन्न कर महातत्त्वों में विभाजित करता है। वह मृतक शरीर के तत्त्वों को महातत्त्वों में मिलाने की क्रिया ठीक एक साल तक कर सकता है। उपरान्त वह तमोगुण फिर सूक्ष्म होकर अपने स्थान को जाता है।

प्राणियो की जीवित अवस्था में जो चैतन्य सत्ता रहती है, वह विनाश नहीं होती, केवल पञ्चभौतिक शरीर ही विनाश होकर पञ्चमहाभूतों मे विभाजित होता है।

स्मरण रहे कि शुक्र में जो तेजोमय चैतन्यस्वरूप रहता है, उसका परिवर्तन नही हो सकता। उसकी नित्य एक अवस्था है। जीवित स्थूल शरीर में जिस तरह वह चैतन्यमय होकर रहता है; उसी तरह प्राणियों के मायाकृत पञ्चभौतिक शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी वह जीव-शरीर में ज्यों का त्यो एक ही अवस्था में बना रहता है। उसको जीवात्मा कहते है।

जीवात्मा की चैतन्य सत्ता, प्रकृति के विनाशकारी उग्र

तमोगुण से भी सूक्ष्म है। इसलिए परिवर्तन और विनाश करनेवाला महा तमोगुण प्रलयकाल में भी चैतन्य के मान मे कुछ भी अन्तर नही कर सकता। बल्कि अन्तिम उग्र तमोगुण घटते-घटते उसी चैतन्य सत्ता में समा जाता है।

जैसे अग्नि से सूक्ष्म तत्त्व वायु है, और वायु-प्रचण्ड अग्नि से भी भस्म नही हो सकता, किन्तु अग्नि बुझ कर स्वतः ही वायु मे मिल जाता है।

इसी तरह शुक्र में जो एक अवस्थावाला तेजोमय दिव्य स्वरूप चैतन्य है, वह प्राणियों के स्थूल पञ्चभौतिक शरीर के मृत्युकाल में विनाश नही होता। विनाश करनेवाला उग्र तमोगुण मृतक शरीर के तत्त्वों को महातत्त्वों में विभाजित करने के पश्चात् शान्त होकर एक साल के पश्चात् जीवात्मा की इच्छा में जाकर समा जाता है। अलबत्ता शुक्र में जो मायाकृत स्थूल पंचभौतिक भाग रहता है, उसका शरीर के साथ मायाकृत होने से विनाश हो जाता है, केवल शेष जीवात्मा रह जाता है, जिसमें बुद्धि, मन और इन्द्रियों की सूक्ष्म इच्छा बनी रहती है।

मृत्युकाल में पञ्चभौतिक शरीर को उग्र तमोगुण सब ओर से घेर लेता है। जिससे चेतनता मृतक शरीर से सम्बन्ध विच्छेद कर देती है। लेकिन उस चेतनता मे सृजन क्रिया का अभाव नहीं होता।

जीवात्मा में वह सृजन क्रिया इच्छा है। इच्छा प्रकृति का

सृजन स्वरूप है। इच्छा पञ्चभौतिक शरीर से अपना सम्बन्ध विच्छेद किसी काल में नहीं चाहती।

लेकिन जब उग्र तमोगुण प्रबल होकर पञ्चभौतिक शरीर को जड़ बना देता है, तब मृत्यु के कारण मृतक शरीर से सृजन रूप इच्छा का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

उस काल में प्रकृति का नाशकारी तमोगुण भेद मृतक शरीर को ठीक इस तरह नाश कर जड़ कर देता है, जैसे स्त्रियों के ऋतु काल में रज नाश होकर जड़ हो जाता था, और प्रकृति की सृजन-क्रिया इच्छारूप से तेजोमय, दिव्यस्वरूप, चैतन्य सत्ता जीवात्मा में आश्रित हो जाती है।

उग्र तमोगुण मृतक शरीर में मृत्यु के पश्चात् भी विनाश-कार्य करता रहता है। जिससे पञ्चभौतिक मृतक शरीर सड़-गलकर पञ्चमहाभूतों में विभाजित होता है।

लेकिन सृजन भेद जीवात्मा मे इच्छा के मुताबिक फिर सृजन कार्य करता है। अथवा फिर दूसरे शरीर का निर्माण करता है।

चेतन्य-जीवात्मा में जहाँ इच्छा आश्रित रहती है, वहाँ मन की गति बनी रहती है। जहाँ मन बना रहता है, वहाँ बुद्धि होती है। और बुद्धि आत्मा में आश्रित रहती है। आत्मा के प्रकाश से बुद्धि में ज्ञानशक्ति बनी रहती है। बुद्धि ज्ञान से निर्णय करती है। उससे मन में विचारशक्ति पैदा होती है। विचार इच्छा के मुताबिक क्रिया करता है। इच्छा इन्द्रियों के

विषयों से वनी रहती है। उससे प्राण आदि इन्द्रियाँ जाग्रत् हो कर माता के गर्भ मे पञ्चभौतिक शरीर जीवित बन जाता है। और उससे शारीरिक क्रियाये होने लगती है और शरीर-सम्बन्धी भोग होने लगते है।

जहाँ शरीर के अन्दर प्राण की क्रिया होती है, वहाँ इच्छा और प्राण के मध्यस्थ उग्र तमोगुण अन्धकार स्वरूप से फैलता और लुप्त होता रहता है क्योंकि बढ़ना और घटना उसका स्वभाव है।

प्राणियो की निद्रावस्था मे उसका साधारण अंश अन्धकार रूप से इच्छा के ज्ञान को आच्छादित करता है। इसलिये निद्रावस्था मे इच्छा के ज्ञान के विना इन्द्रियाँ अपने अपने विपयों से अज्ञान हो जाती हैं।

लेकिन निद्रावस्था मे बुद्धि के ज्ञान से शरीर का सृजन कार्य होता रहता है। जिससे प्राण आदि क्रियायें बदस्तूर वनी रहती हैं।

यदि निद्रा मे अन्धकार परदे के होते हुए उसमे इच्छा क्रिया करना आरम्भ कर दे, तो उस अन्धकार के परदे मे स्वप्न की सृष्टि का निर्माण होने लगता है। और उसको बुद्धि का ज्ञान समझता रहता है। लेकिन उस अन्धकार का अस्तित्व नहीं होता। जो जागते ही नष्ट हो जाता है। इसलिये उसमें पैदा होनेवाली स्वप्न की सृष्टि भी नष्ट हो जाती है।

इच्छा में जो सृजन क्रिया होती है, स्वप्न में वही स्वप्न का निर्माण करती है।

निद्रा के पश्चात् जागते ही जब उग्र तमोगुण का साधारण अन्धकार इच्छा के ज्ञान से हटकर, इच्छा और प्राण के बीच लुप्त हो जाता है। तब इच्छा के ज्ञान से शारीरिक इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों में जाग्रत् हो जाती है। उसको जाग्रत् अवस्था कहते हैं।

यदि निद्रावस्था में इच्छा की सृजन क्रिया शान्त रहे, तो उस अवस्था में स्वप्न की सृष्टि उत्पन्न नहीं होती और निद्रा की शान्त अवस्था बनी रहती है। लेकिन उस अवस्था में भी इच्छा की सृजन क्रिया का अभाव नहीं होता। जिससे प्राणी जागते ही फिर पूर्वइच्छा के मुताबिक कार्यो मे प्रवृत्त हो जाता है।

निद्रावस्था में जो अन्धकार का आकार उत्पन्न होता है, इच्छा में उसका स्थान है। जब वह विस्तृत होकर इच्छा को ढक लेता है, तब इच्छा और प्राण के बीच पञ्चभौतिक शरीर की ओर अन्धकार छा जाता है। उसके पश्चात् फिर जागने पर वह घटकर सूक्ष्म रूप से इच्छा की सृजन-क्रिया मे समा जाता है। निद्रा का अन्धकार भी माता के रज के विनाश-अंश से प्राणियों के शरीर मे उत्पन्न होता है। उसके साधारण अंश से प्राणियों की निद्रावस्था होती है, मध्य अंश से प्राणियों की मृत्यु और महाअंश से मृतक शरीर के तत्त्व छिन्न-भिन्न होकर महातत्त्वों में विभाजित होते हैं।

प्राणियो की जीवित अवस्था में जो इच्छा प्रधान होती है, मरणकाल मे वही इच्छा मन मे लिप्त होकर आश्रित होती है। इच्छा जीवित अवस्था में भी सूक्ष्मता से मन में आश्रित रहती है और मृत्यु के पश्चात् भी सूक्ष्मता से जीव के मन मे आश्रित रहती है। जीव मे जहाँ इच्छा आश्रित रहती है, वहाँ मन की गति बनी रहती है। जहाँ मन रहता है, वहाँ बुद्धि होती है। बुद्धि आत्मा मे आश्रित होती है। इच्छा इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न होती है, इन्द्रियाँ अपने-अपने तत्त्व सम्बन्धी विषयों मे रत होती है, और इन्द्रियाँ सम्बन्धी भोग स्थूल शरीर से होते है। इसलिये इच्छा से भोग के लिये शरीरों की उत्पत्ति होती है।

इच्छा के मुताबिक मनुष्य-समुदाय, गाय, भैस, भेड़, बकरी, घोड़ा, इत्यादि व थलचर, जलचर, नभचर, कीट, पशु आदि अनेक जाति के भोग भोगने के लिये उनके समुदाय में पैदा हो सकता है। सारा संसार एक से दूसरा बनता रहता है, प्रकृति का यह अटल नियम है।

जीवित शरीर मे सारे मनुष्य-समुदाय की इच्छा एक ही तरह की नही होती। प्रत्येक की इच्छाये भिन्न-भिन्न तरह की होती है। इसी तरह जितने कीट पशु आदि प्राणी होते हैं, उनकी भी मनुष्यों की तरह, भिन्न भिन्न इच्छायें होती है। सृष्टि में जितने भी कीट, पशु आदि प्राणी बसते हैं, उन सबमें इच्छा होती है।

जीवित शरीर में जिन मनुष्यों की इच्छा पुत्र, पौत्र व स्त्री आदि मनुष्य-समुदाय मे होती है, वे मरने के पश्चात् पुनर्जन्म में मनुष्य योनि में उत्पन्न होते है।

जिनकी इच्छा गाय, भैंसो, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, हाथी इत्यादि जानवरों में रहती है, मरने के पश्चात् उनका पुनर्जन्म उन्हीं जानवरों में होता है।

जिनकी इच्छा हंस, मोर, मैना तोता आदि पक्षियों में होती है, वे मरने के पश्चात् उन्हीं पक्षियों में जन्म लेते हैं। जिनकी इच्छा मछली आदि जलचर जीवों में होती है, उनका पुनर्जन्म उन्हीं में होता है।

जो मनुष्य देव, यक्ष, भूत-प्रेतों का पूजन करने से उनकी इच्छा करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् उन्ही लोकों में पुनर्जन्म को प्राप्त होते है। इसी तरह सृष्टि के समस्त प्राणियों का अपनी इच्छा के मुताबिक मरने के बाद पुनर्जन्म होता है।

इच्छा जीवात्माओं मे सूक्ष्म अंकुर की तरह रहती है, वह जीवात्माओं में समाई रहती है। जैसे वृक्षों की अंकुर-शक्ति बीजों में समाई हुई रहती है, और वह सूर्य, पृथ्वी आदि तत्त्वों की सहायता से अंकुरित होकर वृक्ष बनता है और उसमें पत्ते, पुष्प, फल इत्यादि वृक्ष की सारी सृष्टि उत्पन्न हो जाती है, जो पहिले उसी अंकुर के अन्तर्गत बीज में समाई हुई रहती है। इसी तरह जीवात्माओं में अंकुर रूप इच्छा पुनर्जन्म शरीर की उत्पत्ति करती है।

प्राणियों की जिस काल में मृत्यु होती है, वे उसी काल मे पुनर्जन्म को ग्रहण नही कर सकते। जब मृतक शरीर के पञ्च-भौतिक तत्त्व विभाजित होकर अपने-अपने तत्त्वों में जा मिलते हैं, तब जीव-शरीर का भी तो कोई स्थान होता है, जहाँ वह मृत्यु के पश्चात् फिलहाल स्थान पाता है।

जिस तरह मृतक शरीर का पृथिवीतत्त्व महापृथिवीतत्त्व म, शरीर जलतत्त्व, महाजलतत्त्व मे, शरीर अग्नितत्त्व, महाअग्नितत्त्व मे, शरीर वायुतत्त्व, महावायुतत्त्व में, और शरीर आकाशतत्त्व, महाआकाशतत्त्व मे मिल जाता है। उसी तरह जीवात्मा जो वायु आकाश से भी सूक्ष्म और तटस्थ है, वह आकाशादि तत्त्वों मे नही टिक सकता। वह मृत्यु के पश्चात् भूलोक के तत्त्वो से प्राप्त होनेवाले स्थूल शरीर को स्थूल भूलोक मे त्यागकर भूलोक के पञ्चतत्त्वों के विस्तार से वाहर भुव' लोक के विस्तार मे पहुँचता है, जिसको चन्द्रलोक व पितृलोक भी कह सकते है।

पितृलोक मे वे ही जीवात्मा पहुँचते हैं, जिनकी इच्छा मे भूलोक-सम्बन्धी वस्तुओं की इच्छा होती है। वे मृत्यु के पश्चात् पितृलोक मे जाते है और पितृलोक मे स्थूल भागो की इच्छा से भूलोक मे आकर स्थूल शरीर मे पैदा होते हैं। मृत्यु के पश्चात् कम से कम एक साल जीव पितृलोक मे रहता है। उग्र तमोगुण जिससे मृत्यु होती है और जो मृतक शरीर के पञ्चभूतों को एक साल तक पञ्च महाभूतों में मिलता रहता

है, वह शरीर पञ्चतत्त्वों को पञ्च महा तत्त्वों में विभाजित करने के पश्चात् शान्त होकर पितृलोक में जीव की इच्छा के उत्पादक तमोगुण में समाता है।

उसके पश्चात् जीव की पितृलोक मे प्रबल इच्छा होती है और उसके मुताबिक पितृलोक से पतित होकर भूलोक में जन्म लेता है। यदि उस जीव की इच्छा मनुष्य-समुदाय के भोगों में बनी हो तो वह मनुष्यों मे जन्म लेता है। इसी तरह जिनकी गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, मच्छली, पक्षी आदि के भोगो मे इच्छा होती है, वे उन्हीं मे जन्म लेते है।

प्रथम वर्णन हो चुका है कि स्त्रियां की योनियों मे शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज की १४ प्रकार की क्रियायें योनि के १४ लोक विस्तार मे सृजन और विनाश भेद से गर्भ में स्थूल शरीरों की रचना करती है। इसलिये शरीर के विस्तार में भी वही गुण-कर्म-स्वभाव होता है और शरीर के विस्तार मे भी १४ प्रकार के लोक होते है।

इच्छा जीवित शरीर मे उन्ही लोकों मे भ्रमण करती हुई शरीर से शारीरिक कार्य कराती रहती है। शरीर प्रत्येक कार्य इच्छा के मुताबिक करता रहता है। जिस काल में इच्छा जिस लोक में रहती है, उस लोक के ज्ञान-अज्ञान के मुताबिक इच्छा मन को वश कर कार्य करती है।

जब मन को इच्छा से यावत् सृष्टिमात्र में सर्वत्र सत्य ही

सत्य प्रतीत होने लगता है, उस काल में मन ज्ञान-इच्छा से शरीर सत्यलोक में रहता है।

जब मन सात्त्विकी इच्छा से ध्यान समाधि में सत्यतत्त्व का चिन्तन करता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर तपःलोक में रहता है।

जब मन इच्छा से समत्व ज्ञान द्वारा समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर जनःलोक में रहता है।

जब मन इच्छा से असत्य कर्मों को त्याग, सत्य कर्मों में प्रवृत्त होता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर महर्लोक में रहता है।

जब मन सात्त्विकी इच्छा से जप, यज्ञ, दान और व्रत करता है, उस काल में मन इच्छा-सहित स्वः (स्वर्ग) लोक में रहता है।

जब मन इच्छा से फल चाहनेवाले कर्म करता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर भुवःलोक में रहता है।

जब मन इच्छा से फल भोग करता है, उस काल में मन इच्छा-सहित भूलोक में रहता है।

जब मन अभिमान की इच्छा से अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर अतललोक में रहता है।

जब मन इच्छा से अपने स्वार्थ के लिये क्रोध करता है,

उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर वितललोक में रहता है।

जब मन इच्छा-सहित लोभ के वशीभूत होकर अनाधिकार वस्तुओं का हरण करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर सुतललोक मे रहता है।

जब मन इच्छा से किसी प्राणी के प्रति विश्वासघात करता है, उस काल में मन इच्छा-सहित शरीर तलातललोक में रहता है।

जब मन इच्छा से किसी वस्तु के मोह में शोकित होता है, उस काल में मन इच्छा-सहित महातललोक मे रहता है।

जब मन इच्छा से असत्य (झूठी गवाही, झूठी बहस, झूठा फ़ैसला इत्यादि) कर्मो मे रत रहता है, उस काल मे मन इच्छा सहित शरीर रसातललोक मे रहता है।

जब मन इच्छा से निर्दोश जीवों का बध करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर पाताल लोक मे रहता है।

जिस तरह जीवित शरीर मे इच्छा बनी रहती है, उसी तरह मृत्यु के पश्चात् भी जीव-शरीर में इच्छा बनी रहती है। इच्छा जीवित शरीर में भी सूक्ष्म और मृत्यु के पश्चात् जीव-शरीर में भी सूक्ष्म होती है। जीवित शरीर मे प्राणी जिस वस्तु की अधिक इच्छा करता है, मृत्यु के पश्चात् जीव की इच्छा मे उस वस्तु की आसक्ति बनी रहती है।

जब प्राणियों के मृत्युकाल में पञ्च भौतिक शरीर के चौदह

लोक आकार मे विनाशकारी उग्र तमोगुण समा जाता है। तव जीवात्मा शरीर को त्यागकर इच्छा के मुताविक विश्व-विराट् के चौदह लोकों मे से उस लोक मे पहुँचता है, जिस लोक सम्बन्धी इच्छा मृत्युकाल मे जीवात्मा मे वनी रहती है।

मृत्यु के समय जीवात्मा की इच्छा में यदि सर्व सृष्टि में सर्वत्र सत्य ही सत्य प्रतीत होता हो तो उस अवस्था मे जीवात्मा शरीर सत्यलोक को त्याग कर विश्वविराट् के सत्य-लोक मे जाता है।

मृत्यु के समय जीवात्मा की इच्छा मे ज्ञान समाधि द्वारा सत्य तत्त्व का चिन्तन होता हो तो उस अवस्था में जीवात्मा विश्वविराट् के तप.लोक में पहुँचता है।

मृत्युकाल मे जो जीवात्मा इच्छा से सृष्टि की समस्त वस्तुओं को परमात्मा की समझकर किसी मे आसक्त नहीं होता, वह विश्वविराट् के जनलोक मे पहुँचता है।

असत्य कर्मों को त्याग कर इच्छा से सत्य कर्मो मे प्रवृत्त रहनेवाला जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्व ब्रह्माण्ड के मह-र्लोक में पहुँचता है।

जो मनुष्य जीवित अवस्था मे अपनी प्राप्य वस्तुओं को परमात्मा की समझकर यज्ञ व दान द्वारा अग्नि व ब्राह्मण आदिकों को परमात्मा रुप समझकर उनको अर्पण करता है, या जप और व्रत द्वारा अपनी आसुरिक वृत्तियों को रोकता है, जिससे अपने द्वारा किसी को क्लेश न पहुँचे, इस प्रकार की

इच्छावाला जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के स्वःलोक में पहुँचता है।

जो जीवात्मा इच्छा से फल चाहनेवाले कर्मों मे रत रहता है, वह मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के भुवः (पितृ) लोक में पहुँचता है।

मरने के पश्चात् जीवात्मा स्थूल मानसिक भोगों की इच्छा से फिर भूलोक में जन्म लेता है।

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की इच्छा मे (छोटे बड़े या किसी तरह का) अभिमान भेद होने से वह विश्वविराट् के अतल-लोक मे जाता है।

जब मन इच्छा से अपने स्वार्थ के लिये क्रोध करता है, तब जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् वितल लोक में जाता है।

लोभ के वशीभूत होकर अनधिकार वस्तु की इच्छावाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के सुतल लोक में जाता है।

किसी प्राणी के प्रति विश्वासघात की इच्छावाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के तलातल लोक मे जाता है।

इच्छा से सांसारिक वस्तुओं के मोह मे शोकित रहनेवाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट के रसातल लोक में जाता है।

इच्छा से असत्य कर्मों (झूठी गवाही, झूठा फैसला, झूठी बहस इत्यादि) मे रत रहनेवाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्व-विराट् के महातल लोक को जाता है।

इच्छा से निर्दोष जीवों का घातक जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के पाताल लोक मे पहुँचता है।

एवं, जीवात्मा इच्छा की आसक्ति से मृत्यु के पश्चाद् विश्व-विराट् के चौदह लोकों मे पहुँचता है।

जब प्राणी सत्त्व, रज, तम, तीनों प्रकार की इच्छाओं से समूल रहित हो जाता है, तब जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त होता है। वही जीवात्मा का परम धाम है। ज्ञानी उसको नहीं भूलते। उसकी प्राप्ति के बिना जीवात्मा को सत्य आनन्द नहीं हो सकता।

अध्याय—२१

वनस्पति

पृथ्वी में वनस्पतियों के स्थूल शरीर को उत्पन्न करनेवाली रजरूप गर्भकेशर और चन्द्रमा में शुक्र रूप परागकेशर होता है। चन्द्रमा का प्रकाश महावायुमण्डल के कारण जैसे पृथ्वी मे पहुँचता है, वैसे ही उससे पराग भी महावायुमण्डल द्वारा पृथ्वी को प्राप्त होता है।

रज की तरह गर्भकेशर के दो भेद होते हैं। उत्तरायण में सत्त्वगुणी और दक्षिणायन में तमोगुणी।

पराग के भी दो प्रधान और दो उपभेद होते हैं। पूर्णमासी के पूर्ण प्रकाशित चन्द्रबिम्ब से पूर्ण सत्त्वगुणी शुक्ल पराग और अमावास्या के पूर्णअन्धकारयुक्त चन्द्रबिम्ब से पूर्ण तमोगुणी काला पराग होता है।

इनके अतिरिक्त शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों की चौदह तिथियों के चौदह चन्द्रबिम्बों से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग पैदा होते हैं।

वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी के गर्भकेशर को प्रथम पूर्ण सत्त्वगुणी परागकेशर प्राप्त होता है, क्योंकि सत्त्वगुण ही सृष्टि रचने का आदि कारण है। फिर पूर्ण तमोगुणी पराग

केशर पृथ्वी के गर्भकेशर को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् १४ तिथियो के १४ चन्द्रबिम्ब से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग-केशर पृथ्वी को प्राप्त होते है। उनमे से प्रथम सात प्रकार के रजोगुणी परागकेशरों के योग मे क्रमशः सत्त्वगुण अधिक, तमोगुण न्यून और अन्य सात प्रकार के रजोगुणी परागकेशरों के योग में क्रमश. तमोगुण अधिक, सत्त्वगुण न्यून होता है।

जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियो के चन्द्रबिम्बों पर सात तिथियों में प्रकाश भिन्न भिन्न सम्बन्ध से अधिक, अन्धकार न्यून और सात तिथियो के चन्द्रबिम्बों पर अन्धकार विभिन्न सात प्रकार से अधिक, प्रकाश न्यून होते हैं, ठीक उसी सम्बन्ध से चौदह प्रकार के रजोगुणी परागकेशरों मे सत्त्वगुण और तमोगुण के भेद होते है। सत्त्वगुण और तमोगुण के भेदो से और भी असंख्य परागकेशर चन्द्रमा से उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्राप्त हुए।

जलतत्त्व से संयुक्त पृथ्वी मे गर्भकेशर उत्पन्न होता है। गर्भकेशर चिपकदार होता है। जैसे मिट्टी जल से संयुक्त होने पर चिपकदार होती है। पराग चिपकदार नही होती। उसमे उड़नेवाला खुरखुरापन होता है, जिससे वायु उसको सुगमता से उड़ा सकता है।

वनस्पतियों की उत्पत्ति के आरम्भ काल में पृथ्वी के जल स्थलसंयुक्त पंक स्थान मे सर्वप्रथम गर्भकेशर उत्पन्न हुआ और वहाँ चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाश के साथ पूर्ण सत्त्वगुणी

परागकेशर वायुमण्डल से उड़कर गर्भकेशर में संयुक्त हो गया। पश्चात् अमावास्या के पूर्ण अन्धकारयुक्त चन्द्रबिम्ब से पूर्ण तमोगुणी पराग महावायुमण्डल से उड़कर पृथ्वी के गर्भकेशर को प्राप्त हुआ। फिर शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियों के प्रकाश-अप्रकाशसंयुक्त चौदह प्रकार के रजोगुणी चन्द्रबिम्बों से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग वायु द्वारा पृथ्वी मे गर्भकेशर को प्राप्त हुए। इसी तरह चन्द्रमा से पैदा होनेवाले अन्य अनन्त पराग पृथ्वी को प्राप्त हुए।

वनस्पति सृष्टि के आरम्भ मे गर्भकेशर के चिपकदार परमाणुओं को पराग के परमाणु प्राप्त होने पर उन दोनों के योग से एक तरह की उत्पादन-शक्ति उत्पन्न होती है। वह शक्ति आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीतत्त्व की सहायता से वनस्पति अवस्था को प्राप्त होती है।

वनस्पति अवस्था मे पराग का भाग गर्भकेशर के सत्त्वगुण अंश को ग्रहण कर अङ्कुररूप में पैदा होकर पृथ्वी से ऊपर महावायुमण्डल में चन्द्रमण्डल की ओर बढ़ने और फैलने लगता है। और गर्भकेशर का भाग पराग के तमोगुण अंश को ग्रहण कर जड़रूप मे पृथ्वी के अन्दर बढ़ता और फैलता है। पराग और गर्भकेशर संयुक्त होने से पहले जो अदृश्य होते है, वे अंकुर और जड़रूप मे पञ्चतत्त्व की सहायता से पैदा होकर वनस्पतिस्वरूप दृश्यमान हो जाते हैं। जैसे पीछे बीजों से पैदा होनेवाली वनस्पतियों के तने और जड़ो के

भाग उत्पन्न होकर, तने पृथ्वी से ऊपर महावायुमण्डल की ओर और जड़े पृथ्वी के अन्दर बढ़ती और फैलती है, ठीक इसी तरह वनस्पति सृष्टि के आरम्भ में (संयुक्त पराग और गर्भकेशर के) पराग भाग से तने की और गर्भकेशर भाग से जड़ की उत्पत्ति होती है।

वनस्पतियों के तने चन्द्रमा से उत्पन्न होनेवाले परागो की शक्ति से उत्पन्न होते है। इसलिये तने के अङ्ग प्रत्यङ्गों की रचना पञ्चभूतो की सहायता से पृथ्वी से ऊपर चन्द्रमण्डल की ओर होती है, जिससे तनों का सर्वाङ्ग पृथ्वी से ऊपर बढ़ता और फैलता है। जड़ का भाग पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले गर्भकेशर, की शक्ति से पैदा होता है। इसलिये वनस्पतियों की जड़े पृथ्वी मे सम्मिलित पञ्चभूतों की सहायता से पृथ्वी के अन्दर बढ़ती और फैलती है।

पिण्डजों के शरीर जैसे चौदह लोक रचना से बनते है, वैसे ही वनस्पतियो में भी चौदह लोक रचना से उत्पन्न होती है। अथवा जैसे चन्द्रमा चौदह तिथियों मे भ्रमण करता है, वैसे ही पराग वनस्पतियों के विस्तार को चौदह लोक मे उत्पन्न-कर उनमे भ्रमण करता है।

सत्त्वगुणी सप्त लोकों के विस्तार मे वनस्पतियो के तने और तमोगुणी सात लोकों के विस्तार मे उनकी जडे पैदा होती हैं। जड़ की रचना मे तमोगुण की अधिकता से उसका नाम जड़ है।

वनस्पतियो के तनों का विस्तार सत्त्वगुणी सप्त लोकों में इस प्रकार होता है—भूलोक मे तना, भुवःलोक में टहनियाँ, स्वःलोक मे कोंपल, महःलोक में पत्ते, जनःलोक में पुष्प, तपः लोक में फलों का गुद्दा और सत्यलोक में बीज होते है।

जड़ के भाग तमोगुणी सप्तलोकों में इस प्रकार होते है:—अतल लोक मे जड़ का विस्तार, वितल लोक में रेशे (जड़ के मुँह), सुतल लोक में जड़ का जलकोष, तलातल लोक में जड़ का वायुकोष, महःतल लोक में जड़ की गंधकोष, रसातल लोक मे जड़ का तेज, पाताल लोक मे चन्द्रमा, जो कि कन्दवाली वनस्पतियों के कन्दों मे परागरूप से रहता है। अर्थात् कन्दों में जो बीज की शक्ति होती है।

जैसे माता के गर्भ में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की शरीर-बनावट म माता के शरीर में सम्मिलित पञ्चभूतों के योग से प्रथम सिर की रचना उत्पन्न होती है, वैसे ही पृथ्वी के गर्भ में उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियो की उत्पत्ति में (पृथ्वी में सम्मिलित पञ्चभूतों के योग से) प्रथम तनों की रचना उत्पन्न होती है और तब जड़ों की। किन्तु साधारण दृष्टि मे प्रथम जड़ की और तब अङ्कुर की उत्पत्ति प्रतीत होती है।

जड़ की अन्तिम सीमा में वनस्पति को उत्पन्न करनेवाले परागकेशर का कुछ सत्त्वगुण अंश होता है। वह अपने प्रभाव से पृथ्वी के गर्भकेशर द्वारा उत्पन्न होनेवाली जड़ों में जो पृथ्वी वायुतत्त्व होता है, उसकी रजोगुणी शोषण शक्ति

से पृथ्वी में सम्मिलित वायु को, जिसमें रस, गन्ध और पृथ्वी के सूक्ष्म अंश जो तेज सहित घुलकर मिले होते है, उनको शोषता है। जड़ का वायु भूगर्भ से रस, गन्ध, तेज को शोषकर वनस्पतियों की जड़ों मे पहुॅचाता है। और वहाॅ से वे जड़ के अंग प्रतिअंगों मे होते हुए तने के अंगों प्रतिअंगों में पहुॅचते है। जिससे तने के सारे अङ्ग-प्रतिअंङ्ग वायुमण्डल की ओर बढ़ते और फैलते हैं।

जड़ का शोषणवायु तने मे पहुॅकर तने के सारे अङ्ग प्रति-अङ्गो, यानी छाल, टहनियों, कलियों, पत्तों, पुष्पों और फलों में शोषण शक्ति उत्पन्न करता है, जिससे वे सब अपने स्पर्श करनेवाले वायु को शोषकर रस, प्रकाश, तेज, गन्ध और परागों को ग्रहण कर पोषित होते हैं, जो कि वनस्पतियों को स्पर्श करने-वाले महावायुमण्डल मे पहले से मिले होते हैं। वे वनस्पतियों के तने मे पहुॅचकर तने के सारे अङ्ग प्रतिअङ्गों मे भ्रमण करते हुए जड़ के अङ्ग प्रतिअङ्गों मे पहुॅचते है। उन्हीं से तना और जड़ के अङ्ग प्रतिअङ्ग सुदृढ़ बनकर बढ़ते और फैलते हैं।

वनस्पतियाॅ जड़ों के द्वारा भूगर्भ से और तनों के द्वारा महा-वायुमण्डल से जिन रस, गन्ध, पृथ्वी के सूक्ष्म अणु, तेज और परागों को ग्रहण करती है, वे ही उनके खाद्य पदार्थ हैं।

जड़ का वायु जड़ और तने के अङ्गों प्रतिअङ्गों मे भ्रमण-कर दूपित होने से तने की छाल के अवयवों द्वारा निकलकर महावायुमण्डल में मिल जाता है। और तने का वायु तने और

होते हैं जड़ के अङ्ग प्रति अङ्गों में घूमकर दूषित होने से जड़ की छाल के अवयवों द्वारा बाहर निकलकर भूगर्भ वायु से मिल जाता है। वनस्पतियों के तने का भाग महावायुमण्डल से स्पर्श होनेवाले वायु को दिन-भर शोषता है, और जड़ का भाग उस वायु को दूषित होने पर पृथ्वी के अन्दर त्यागता है। किन्तु रात्रि को जड़ का भाग भूगर्भ से पृथ्वी में सम्मिलित वायु को शोषता है और तने का भाग उसको दूषित होने पर महावायुमण्डल में छोड़ता है।

वनस्पतियाँ हमारी तरह हर समय साँस लेती और छोड़ती नहीं, वे तनों के द्वारा दिनभर वायु शोषती है और रात्रि भर उनके द्वारा बाहर फेंकती हैं। जड़ों के द्वारा रात्रि भर पृथ्वी से वायु शोषती हैं और दिन भर उनके द्वारा बाहर फेंकती है।

पृथ्वी के अन्दर जहाँ वनस्पतियों की जड़ें होती हैं वहाँ तेज रस को पतला बनाता है। उस पतले रस मे मिट्टी के अणु घुलकर मिले होते है। वनस्पतियों की जड़े उस रस को सुगमता से शोष लेती है। महावायुमण्डल तेज के कारण जल को भाप द्वारा और पृथ्वी के सूक्ष्म अंश गन्ध को ग्रहण कर वनस्पतियों के तनों के विस्तार में फैलाता है, जिनको वे अपने अवयवों द्वारा शोषकर ग्रहण करती है। वनस्पतियों की जड़ और तनों के अङ्ग प्रतिअङ्गों में विचरनेवाला रस जल से उत्पन्न होता है। पृथ्वीतत्व से जड़ तनों के अङ्ग प्रति अङ्गों में स्थूलपन और गन्ध पैदा होती है। पृथ्वीतत्त्व रस में

घुलकर वायु के कारण जड़ तनों के सारे अङ्ग प्रति अङ्गो में पहुॅचकर उनको पुष्ट करता है।

परागकेशर से उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियो के भाग में तना, टहनियॉ, कोपले, पत्ते, पुष्प, फल और बीज पैदा होते है। किन्तु जड़ें पृथ्वी की गर्भकेशर से उत्पन्न होने के कारण एक ही अवस्था मे बढ़ती है। उसमे तने की तरह कोंपल, पत्ते और पुष्प नहीं होते।

जड़े एक ही अवस्था मे बढ़कर अपने सप्त लोकों के विस्तार मे बढ़कर सात भेद बनाती हैं.—अर्थात् (१) जड़ का विस्तार, (२) जड़ के रेशे, (३) जड़ का जलकोष, (४) जड़ का वायुकोष, (५) जड़ का गन्धकोष, (६) जड़ का तेजकोष, (७) वनस्पतियां की उत्पादन शक्ति (पराग)।

उत्पत्तिकाल मे वनस्पतियॉ तने और जड के सर्वाङ्गों मे इस तरह उत्पन्न होती है.—अतल लोक मे जड़ का विस्तार, भूलोक मे तने का। वितल लोक मे जड़ के रेशे, भुवःलोक मे तने पर टहनियॉ। सुतल लोक मे जड़ का जलकोष, स्वःलोक मे तने पर कोंपले। तलातल लोक मे जड़ का वायुकोष, महःलोक मे तने पर पत्तियॉ। मह तल लोक मे जड़ का गन्धकोप, जनःलोक मे तने पर पुष्प। रसातल लोक मे जड़ मे तेजकोष, तप.लोक मे तने पर फल मे रसादार गुदगुदा। पाताल लोक में जड़ में चन्द्रमा (पराग) जो कन्दवाली वनस्पतियो की कन्दो में बीज रूप से रहता है। और सत्य लोक में तने पर बीज उत्पन्न

बीज में भी जो उत्पादन शक्ति होती है, वह उसको पराग से प्राप्त होती है।

वनस्पतियों की जड़ों का स्थूलपन उत्पन्न होने पर तनों का स्थूलपन उत्पन्न होता है। जड़ के रेशे उत्पन्न होने पर तने पर टहनियाँ, जड़ मे जलकोप बनने पर तने में कोपलें और जड़ मे वायुकोप बनने पर तने पर पत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये पत्तियों मे वायुशोपण की अधिक शक्ति होती है। जड़ मे गन्ध कोप बनने पर तने पर पुष्प उत्पन्न होते हैं। इसलिये पुष्पों में गन्ध उत्पन्न होती है। जड़ में तेजकोप बनने पर तने में फल के गुद्दे मे रस की परिपक्व अवस्था उत्पन्न होती है। जड़ में परागकेशर की परिपक्व अवस्था से तने में बीज की उत्पादन शक्ति पैदा होती है।

गुणों के कारण जैसे परागों के मुख्य चार प्रकार के भेद बताये गये हैं, वैसे ही रूप-रंग से भी उनमे चार प्रकार के प्रधान भेद होते हैं.—जो पूर्णमासी का पूर्ण प्रकाशयुक्त सत्त्वगुणी पराग होता है, उसका शुक्ल रूप होता है। जो अमावास्या मे पूर्ण अन्धकारयुक्त तमोगुणी परागकेशर होता है, उसका काला रूप होता है। जो शुक्लपक्ष के अधिक प्रकाश और न्यून अप्रकाशयुक्त रजोगुणी पराग होता है उसका पीला रूप होता है। और जो कृष्णपक्ष के अधिक अप्रकाश और न्यून प्रकाशयुक्त रजोगुणी पराग होता है, उसका लाल रूप होता है। लेकिन पराग का साधारणतः पीला रूप

होता है। और गर्भकेशर का साधारण रूप पृथ्वी का सा मटियाला होता है। गर्भकेशर के उस मटियाले रङ्ग के भी दो भेद सुफेद और काले होते है।

पराग और गर्भकेशर के रूपों के योग से उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियों के अङ्ग प्रतिअङ्गों का रूप-रङ्ग इस तरह उत्पन्न होता है—सुफेद, काला, पीला और लाल इन चार प्रकार के रङ्गों मे समस्त वनस्पतियों की उत्पत्ति के समय उनकी जड़ों का रङ्ग किसी का सफेद—किसी का काला, किसी का पीला और किसी का लाल—चार प्रकार के होते है। वे चारों रङ्ग गर्भकेशर के मटियाले रङ्ग से कुछ काल पश्चात् आच्छादित होकर सब वनस्पतियों की जड़ों की बाहरी छाल का रङ्ग पृथ्वी का सा हो जाता है।

वनस्पतियों के तने भी जो जड़ से घनिष्ट सम्बन्ध रखते है, उत्पत्ति काल मे उनके रङ्ग भी पराग के रङ्गों की तरह चार प्रकार के होते हैं:—अर्थात् सुफेद, काले, पीले और लाल। उत्पत्ति से कुछ काल पश्चात् सब प्रकार के तनों की बाहरी छाल का रङ्ग गर्भकेशर के मटियाले रङ्ग से आच्छादित होकर पृथ्वी का सा हो जाता है। किन्तु जड़ों और तनों की छालों के मटियाले रङ्ग के साथ परागो के चार प्रकार के रङ्ग सम्मिलित होने से किसी के जड़ और तने की छाल का रङ्ग सुफेद मटियाला, किसी के जड़ तने की छाल का रङ्ग काला-मटियाला, किसी के जड़ तने की छाल का रङ्ग पीला-मटियाला और

किसी के जड़ तने की छाल का रङ्ग लाल-मटियाला हो जाता है।

इसी तरह वनस्पतियों की छालों के अन्दर जो काष्ठ होते हैं उनके रङ्ग भी चार प्रकार के होते हैः—अर्थात् शुक्ल पराग से उत्पन्न काष्ठ का रङ्ग सुफेद, काले पराग से उत्पन्न काष्ठ का रंग काला, पीले पराग से उत्पन्न काष्ठ का रङ्ग पीला और लाल पराग से उत्पन्न काष्ठ का रङ्ग लाल होता है।

सब प्रकार के रङ्गोंवाले काष्ठ मे गर्भकेशर का मटियाला रङ्ग सम्मिलित होता है। वनस्पतियों के अन्य अङ्ग प्रतिअङ्गों से जड़, तना और टहनियों मे पृथ्वीतत्त्व अधिक होता है। इस-लिये उनमे अङ्ग प्रतिअङ्गों की अपेक्षा पृथ्वी का अधिक रङ्ग आता है। पराग का रङ्ग इनमे न्यूनता से सम्मिलित रहता है।

टहनियों मे प्रथम कोंपलें पैदा होती है। कोपलों के रङ्गों में भी गर्भकेशर का रङ्ग पराग के रङ्ग से कुछ अधिक होता है। इसलिये कोंपलें कोई सुफेद-मटियाले रङ्गवाली, कोई काले मटियाले रङ्गवाली, कोई पीले-मटियाले रङ्गवाली और कोई लाल-मटियाले रङ्गवाली होती है।

कोंपलों के पश्चात् उनमें पत्तियाँ उत्पन्न होती है। उनका रङ्ग गर्भकेशर के तमोगुणी काले रङ्ग और पराग के साधारण पीले रङ्ग के योग से हरा होता है। पत्तियों के रङ्ग मे पराग और गर्भकेशर के रङ्गो की समानता होती है। इसलिये काले और पीले रङ्गों के समान योग से उनमें हरा रङ्ग आता है।

पत्तियों के हरेपन में भी पराग के चार प्रकार के रङ्गों के भेद से किसी वनस्पति मे सुफेद हरियालीवाली किसी मे काली हरियालीवाली, किसी मे पीली हरियालीवाली, और किसी मे लाल हरियालीवाली पत्तियाँ होती हैं पत्तियों मे वायु तत्त्व की अधिकता के कारण वनस्पतियों के अन्य अङ्गों से उनमे वायुशोषण की विशेष शक्ति होती है।

वनस्पतियों में पत्तियों की उत्पत्ति के पश्चात् पुष्प उत्पन्न होते हैं। उनके रङ्गों मे पराग का रङ्ग अधिक और गर्भकेशर का रङ्ग न्यून हो जाता है। पराग के रङ्गों की तरह पुष्प-सृष्टि में भी मुख्य चार प्रकार के रङ्ग होते हैं। सफेद परागवाले बीजों से पुष्पों का रङ्ग सफेद, काले परागवाले बीजों से पुष्पों का रङ्ग काला, पीले परागवाले बीजों से पुष्पों का रङ्ग पीला, और लाल परागवाले बीजों से पुष्पों का रङ्ग लाल होता है। पुष्प-सृष्टि में अन्य रङ्ग इन्हीं रङ्गों के योग भेद से पैदा होते हैं। बीजों में जैसे रङ्गवाले पराग होते हैं पुष्पों मे वैसे ही रङ्ग आते है।

सब प्रकार के पुष्पों मे पराग के साथ जो गर्भकेशर रहता है, यद्यपि उसका रङ्ग पुष्पों मे पराग के रङ्गों के साथ न्यून मात्रा से रहता है, तथापि वह पुष्पों में गन्ध गुण से अधिक रहता है।

गर्भकेशर के दो रङ्गों की तरह उसमें गन्ध के भी दो भेद सुगन्ध और दुर्गन्ध होते है। जिन पुष्पों में गर्भकेशर की सत्त्वगुणी गन्ध होती है उनमें सुगन्ध, और जिनमे तमोगुणी गन्धहोती है उनमें दुर्गन्ध होती है। जब जड के भाग में गन्ध-

कोप बनता है, तब तने के भाग में पुष्प पैदा होते हैं। वनस्पतियों के जड़, तने के भाग मे विचरनेवाला वायु जड़ के गन्धकोष से गन्धभेदों को पुष्पों में पहुँचाता है, जिससे पुष्पों में गन्ध आती है।

पुष्पों में रङ्गों के अतिरिक्त रचनाभेद से पराग और गर्भ-केशर बीजों में समान होते हैं। पराग और गर्भकेशर जो वनस्पतियों के तनों और जड़ों की रचना में पृथक् पृथक् तनों और जड़ों में विभाजित हो जाते हैं। वे पुष्पों में संयुक्त होकर वनस्पति-उत्पादक बीजों की रचना करते हैं।

अर्थात् पुष्पों मे बीज बनते है। पुष्पों मे पराग और गर्भकेशर के भेदों से वनस्पति-सृष्टि चार प्रकार की होती है। पराग और गर्भकेशर के भेद से तीन प्रकार के पुष्पों में बीजों की रचना होती है, और चौथे प्रकार के पुष्पों में बीज पैदा नहीं होते।

प्रथम वर्णन हो चुका है कि गर्भकेशर पृथ्वीतत्त्व में होता है, इसलिये जिन पुष्पों में गर्भकेशर होता है वे फलयुक्त होते हैं। फल पृथ्वी का सूक्ष्म रूप समझना चाहिये। दूसरे प्रकार के पुष्प जिनमें पराग होता है वे फलयुक्त नहीं होते। उनके अंदर एक तरह के रेशे अथवा एक डण्ठल सा होता है, जिनमें खुरखुरेपनवाले अणु होते हैं। उन्हीं को पराग कहते हैं। इन दोनो प्रकार के अलग अलग पुष्पों से गर्भकेशर और पराग इस प्रकार से संयुक्त होकर बीजों की रचना करते हैं।

पराग खुरखुरा होने से वायु मे उड़नेवाला होता है। उसके परमाणु वायु मे उड़कर गर्भकेशरयुक्त पुष्पों के गर्भकेशर मे जा मिलते है। या पुष्पो से रस लेनेवाले भ्रमर व शहद की मक्खियों के अङ्गो मे लिपटकर उनके द्वारा गर्भकेशर के पुष्पों मे पहुँचता है। वायु अथवा भ्रमर या शहद की मक्ख्यिों द्वारा पराग गर्भकेशर के पुष्पो मे पहुँचने पर गर्भकेशर पराग में लिपटकर दोनों फलो के अन्दर समाकर वीजो की रचना करते है। गर्भकेशर फलों के अन्दर सामने पर पुष्प मुरझाकर विनाश हो जाते है। जिन फलदार पुष्पो के गर्भकेशर मे पराग किसी तरह नही पहुँच सकता, उन पुष्पो के फलों मे वीज की क्रिया नही हो सकती। वे पुष्प फलो के सहित सड़ गलकर नष्ट हो जाते है।

वनस्पतियों मे ऐसे भेदवाले सबसे बड़े पुष्प कद्दू के होते हैं। कद्दू के एक प्रकार के पुष्प गर्भकेशरयुक्त और दूसरे प्रकार के परागयुक्त होते है। गर्भकेशरवाले पुष्प फलो में होते है। उनके अन्दर चिपकदार केशर होता है। और जो परागवाले पुष्प होते है, वे फलो में नहीं होते। उनके अन्दर एक लम्बा-सा डण्ठल होता है जिस पर छोटे-छोटे पीले रङ्गवाले खुरखुरे अणु होते हैं। उन्हीं को पराग कहते हैं।

जव पराग पुष्पो से वायु अथवा भ्रमर या शहद की मक्खियों द्वारा गर्भकेशरयुक्त पुष्पों में पहुँचता है, तब गर्भकेशर

पराग को ग्रहण कर पैदा होनेवाले फलों में समाकर उनके अन्दर वे दोनों बीजों के रूप मे धीरे-धीरे बढ़कर उत्पादक शक्ति बनते हैं। फलों के अन्दर जैसे-जैसे बीजों की रचना होती है, वैसे ही वैसे फल भी बढ़ते रहते है। वनस्पतियों के तनों और जड़ों में विचरनेवाले पराग और गर्भकेशर धीरे-धीरे फलों के अन्दर आकर बीजों मे उत्पादन शक्ति बनते है। फलों के परिपक होने पर बीजों मे पूर्ण उत्पादन शक्ति हो जाती है।

कद्दू के अतिरिक्त भुजेला (पेठा), ककड़ी, गोढड़ी, खरबूज़ा, तरबूज इत्यादि अनेक वनस्पतियों मे पराग और गर्भकेशर के भेदों से दो प्रकार के पुष्प होते हैं। उनमें भी कद्दू के पुष्पों की क्रिया की तरह फलों में बीजों की उत्पत्ति होती है। उनके फलों के परिपक्व होने से बीजों में पूर्ण उत्पादन शक्ति होती है।

वनस्पति-सृष्टि में अधिक वनस्पतियाँ ऐसी हैं, जिनमें पराग और गर्भकेशर के भेदो से भिन्न-भिन्न दो तरह के पुष्प नही होते, किन्तु उनके एक ही प्रकार के पुष्पों में पराग और गर्भकेशर को धारण करनेवाले दो भाग होते है। ऐसे पुष्पों के अन्दर एक प्रकार के रेशे होते हैं। वे किसी के अन्दर कई बारीक रेशे होते हैं और किसी के अन्दर एक मोटा सा डण्ठल होता है। उन सब प्रकार के रेशों में पराग होता है और उनके जड़ के भाग में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर होता है। ऐसे पुष्प

प्रायः फलदार होते हैं। उन पुष्पों के पूर्ण खिलने पर रेशों में पराग के खुरखुरे अणु तैयार हो जाते हैं और उनकी जड़ों से पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर में भी पूर्ण चिपकदारपन तैयार हो जाता है।

वायु की टक्कर के कारण रेशों से पराग गिरकर पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर से संयुक्त होता है। ये दोनों फल के अन्दर समाकर फलों की परिपक्व अवस्था तक धीरे धीरे बीजों की रचना करते हैं। गर्भकेशर और पराग के जो सत्त्वगुण अंश वनस्पतियों के जड़ों और तनों के अङ्ग प्रतिअङ्गों में रस के साथ भ्रमण करते हैं, वे फलों में पहुँचकर बीजों की उत्पादन शक्ति बनते हैं। बीजों की पूर्ण उत्पादन शक्ति पैदा होने तक वे रस के साथ फलों में आकर उनको भी बढ़ाते रहते हैं। बीजों की उत्पादन शक्ति फलों को परिपक्व करती है। वनस्पतियों के सर्वाङ्ग से फलों में रस आकर बीजों का इस तरह पोषण होता है, जैसे माता का सर्वाङ्ग रसरूपी दूध स्तनों में जमा होकर बच्चे का पोषण करता है।

सन, खुमानी, आड़ू, अनार, केला, सेब, नासपाती, सरसों, गेहूँ, जौ, धान, राई, मण्डुवा, लाई इत्यादि बहुत सी वनस्पतियों में इसी तरह के पुष्प पैदा होते हैं। इन सब पुष्पों में रेशे व डण्ठल होते हैं। जैसे सन के पुष्प के अन्दर एक मोटा सा डण्ठल होता है और शेष वनस्पतियों के पुष्पों में रेशे होते हैं। उन सब में पराग होता है। रेशों की जड़ों में पुष्पों के अन्दर

गर्भकेशर होता है। पुष्पों के पूर्ण खिलने पर पराग गिरकर गर्भकेशर से मिल जाता है। इन दोनों के संयोग से इन सब वनस्पतियों में फल और बीज पैदा होते हैं।

गोभी, मूली, प्याज, जवास, गुलाब और गेंदा, इनमें भी इसी तरह के पुष्प होते हैं। इनमें भी पराग और गर्भकेशर की उपर्युक्त क्रिया से बीज पैदा होते हैं।

जिन वनस्पतियों में छोटे छोटे पुष्पों के झुण्ड (बौर) होते हैं उनमें भी गर्भकेशर और पराग के दो स्थान विद्यमान रहते हैं। उन पुष्पों के अन्दर बारीक बारीक रेशों में पराग और उनकी जड़ों में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर होता है। पराग और गर्भकेशर के संयोग से उनमें फल और बीज पैदा होते हैं। आम और अखरोट के पुष्पों के झुण्ड में पराग और गर्भकेशर के दो भेद होते हैं, जिनके योग से उनमें फल व बीज पैदा होते हैं।

वनस्पति-सृष्टि में कुछ वनस्पतियाँ ऐसी हैं, जिनमें केवल पराग पुष्प होते हैं, गर्भकेशरवाले नहीं। गर्भकेशर ऐसी वनस्पतियों के तनों के सर्वाङ्ग में भ्रमण करता है। तने के अन्दर विचरनेवाला वायु पुष्पों से पराग को रस द्वारा खींचकर उनकी गाँठों में ठहराता है। वहाँ पराग गर्भकेशर में संयुक्त होने से बीजों की रचना होती है। जैसे मक्की के पौदों के सिर पर एक प्रकार की बाल सी होती है, उसमें परागवाले पुष्प लगते हैं, जिनमें पराग होता है, लेकिन गर्भकेशर नहीं

होता। गर्भकेशर मक्की के पौदों के सर्वाङ्ग में भ्रमण करते हुए बाल में पुष्प उत्पन्न होने की अवधि पर मक्की के पौदों की गॉठ मे जमा हो जाता है ।

पौदों की जिस गॉठ मे अधिक गर्भकेशर जमा होता है, तनों मे विचरनेवाला वायु वहॉ पुष्पों से रस द्वारा पराग को खींचकर गर्भकेशर से संयुक्त करता है। जिन गॉठों में पराग और गर्भकेशर संयुक्त होते हैं, उनमे परागवाले पुष्पो के डण्ठलो की तरह एक एक डण्ठल पैदा होते हैं, जिन पर पराग और गर्भकेशर के योग से अनेक बीजों की उत्पत्ति होती है ।

बीजो के साथ एक तरह के रेशे भी पैदा होते है। वे डण्ठल के अन्दर से पैदा होकर बाहर महावायुमण्डल तक सम्बन्ध रखते हुए बीजों को पुष्ट करने मे सहायक होते हैं। यदि मक्की के पौदों की एक ही गॉठ पर पराग और गर्भकेशर संयुक्त हों तो उस गॉठ पर एक डण्ठल सा पैदा होकर उसमे बीज पैदा होते है। यदि दो या तीन गॉठों मे पराग और गर्भकेशर संयुक्त हों तो उन दोनो या तीनों गॉठों मे दो या तीन मक्की के डण्ठल पैदा होंगे और उन सब पर बीज पैदा होगा। मक्का के किसी पौदे की बाल में पराग और गर्भकेशर का योग होने से बाल मे भी बीज पैदा होते हैं ।

वनस्पति-सृष्टि मे कुछ ऐसी वनस्पतियॉ हैं, जिनके पुष्पों मे न पराग होता है और न गर्भकेशर, उनमें केवल गन्ध होता

है। ऐसे पुष्पों मे बीज उत्पन्न नही होते जैसे जाई चमेली इत्यादि। इनके पुष्पों मे न तो पराग होता है न गर्भकेशर, केवल वे गन्धयुक्त होने से सुगन्धित होते है। इनमें बीज पैदा नहीं होते और न इनके अन्दर रेशे होते है। पराग और गर्भकेशर इन वनस्पतियों के तनों और जड़ों के अङ्ग मे होते है। इसलिये इनकी जड़ों और टहनियों मे बीज की तरह वृक्ष बनने की शक्ति होती है।

बहुत सी वनस्पतियाँ ऐसी हैं जिनकी कन्दों में बीज की शक्ति होती है और तने के भाग मे पुष्प होते है। जैसे हल्दी, उसकी कन्दों मे बीज की शक्ति और तने के भाग में पुष्प होते हैं। उनमे न पराग होता है, न गर्भकेशर और न बीज होते है।

सृष्टि में कुछ वनस्पतियाँ ऐसी है जिनमे न तो पुष्प होते हैं और न फल, जैसे ईख। उसमें न तो पुष्प होते हैं, और न फल। बीज की शक्ति ईख की गाँठों मे और गुदा का रस तना के सर्वाङ्ग मे होता है।

कई वनस्पतियों मे पुष्प नही होते लेकिन उनके तने के भाग मे फल और बीज पैदा होते हैं, जैसे अंजीर, गूलर, पीपल और तीमल इत्यादि। इनमें फल होते हैं और फलों के अन्दर बीज होते है; मगर पुष्प नहीं होते। इनके तनों के भाग मे विचरने वाला जो रस होता है, उसमे पराग और गर्भकेशर संयुक्त रहते हैं। प्रायः इनके रस का रङ्ग सफेद और उसमे चिपकदारपन होता है। सफेद रङ्गवाला पराग होता है, और

चिपकदारपनवाला गर्भकेशर, जिनकी उत्पादन अवधि मे वृक्षों से फलो की उत्पत्ति होती है। और फलो की परिपक्व अवस्था मे उनके अन्दर बीजों में उत्पादन शक्ति पैदा होती है। इन वनस्पतियों के तने के हिस्से मे जहाँ रस बाहर की तरफ रचना करता है, वही फल पैदा होते है।

पराग और गर्भकेशर के योग से पुष्पों मे फल उत्पन्न होते है। वृक्षों के अङ्गों में घूमनेवाला रस फलों मे जमा होता है। फलो की शक्ल गर्भकेशर से बनती है। उनको एक तरह की सूक्ष्म पृथ्वी समझना चाहिए। जैसे महापृथ्वी के जल-संयुक्त स्थानो-मे पहिले गर्भकेशर पैदा हुआ था, उसी तरह फलों के रसयुक्त गुदों मे वृक्षों के सर्वाङ्ग से गर्भकेशर आता है।

पराग के सत्त्वोगुण, तमोगुण और-रजोगुण भेदों सेफलों मे रसभेद होते हैं। तेजतत्त्व के कारण फलों मे रसों की परिपक्व अवस्था होती है। वनस्पतियों की जड़ो मे जब तेजकोप पैदा होता है, तब फलों मे रस परिपक्व होते है।

सूक्ष्म पृथ्वीरूप फलों में तेज, जल, पृथ्वी, वायु और आकाशतत्त्वों के कारण गर्भकेशर और पराग के संयुक्त होने से बीजों की रचना होती है। उनके संयोग से फलों के अन्दर बीजों की रचना ठीक उसी सम्बन्ध से होती है, जैसे वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ मे पराग और गर्भकेशर पृथ्वी मे संयुक्त होकर वनस्पति उत्पादन शक्ति बनते है। फलों के भी मुख्य चार प्रकार के रङ्ग होते हैं, सफेद, काला, पीला और लाल।

वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ मे जैसे चन्द्रमा से मुख्य चार प्रकार के पराग गर्भकेशर के पृथक् पृथक् अंशों में संयुक्त होने से पृथ्वी में मुख्य चार प्रकार की वनस्पति-उत्पादक बीज बनते है। वैसे ही समस्त वनस्पतियों मे चार प्रकार के बीज पैदा होते है:—

१ कुछ वनपतियों की कन्दों (जड़ों) में बीज की उत्पादन-शक्ति पैदा होती है। जैसे आलू, हल्दी, कचालू इत्यादि अनेक वनस्पतियों की कन्दों में बीज की शक्ति होती है।

२ कुछ वनस्पतियों की गॉठों में बीज की शक्ति पैदा होती है, जैसे:—ईख। इसमें न तो कन्दवाली वनस्पतियों की तरह कन्द होता है और न फलवाली वनस्पतियों की तरह फल होने है, इसकी गॉठ मे अधिकतर बीज की शक्ति पैदा होती है।

३ कुछ वनस्पतियों के फलों के गुद्दे मे बीज की शक्ति पैदा होती है। जैसे:—गेहूॅ, जौ, धान, मक्की, सरसों, ज्वार, बाजरा, गड़वा, चना, अरहर, मटर, उड़द, मूॅग, सन, अलसी इत्यादि। इन के फलो के गुद्दे मे बीज की शक्ति पैदा होती है।

४ कुछ वनस्पतियों के फलों के गुद्दे के अन्दर बीज होते है। वे किसी के अन्दर गुठलीदार होते है और किसी के अन्दर बिना गुठलीवाले, जैसे आम, खुमानी आरु इत्यादि। इनके बीज गुठलीदार होते है। और नारंगी, नींबू, अनार, कद्दू, ककड़ी, गोदड़ी, तरबूज, खरबूज, अंगूर अञीर, इत्यादि के बीज गुठलीदार नही होते। अनार के बीज का छिलका एक ऐसे ढंग

का है, जो गुठलीदार बीजों के छिलके मे हलका और विना गुठलीवाले बीजों के छिलकों से सख्त होता है। गुठली और विना गुठलीवाले बीजों के छिलकों मे सिर्फ पृथ्वीतत्त्व की न्यूनाधिकता होती है। जिन बीजों के छिलको मे पृथ्वीतत्त्व की अधिकता होती है, वे सख्त होते हैं, और जिनके छिलकों मे पृथ्वीतत्त्व की न्यूनता होती है वे हलके होते है।

अखरोट और बादाम के फलों के रसदार गुद्दे गुठलियों के अन्दर बीज मे होते हैं। पराग और गर्भकेशर का संयोग होने से उन्हीं मे उत्पादन शक्ति होती है।

कई वनस्पतियाँ ऐसी है जिनकी कन्दों मे भी बीज की शक्ति होती है और तना मे भी बीज पैदा होते हैं। उनके फल और बीज दोनो मे उत्पादन शक्ति होती है। ऐसी वनस्पतियों के बीज गुठलीदार नहीं होते। जैसे वाराहीकन्द, तरड़ी, मुँगई इत्यादि। इनकी कन्दो मे भी बीज की शक्ति होती है और फलों मे भी।

पृथ्वीतल मे समस्त वनस्पतियो की कन्दो, गाँठों, फलो और गुठलियो व छिलकों के अन्दर पराग और गर्भकेशर के संयोग से उत्पादन शक्ति (चाहे किसी की कन्द मे हो, चाहे गाँठ मे, चाहे फल मे, चाहे गुठली और छिलका के अन्दर हो) बनती है।

वनस्पतियों मे पैदा होनेवाले सब प्रकार के बीज चन्द्रमा से प्राप्त होनेवाले परागों और पृथ्वी मे पैदा होनेवाले गर्भकेशर

के योग से बनते है। बीजों का स्थूल रूप गर्भकेशर से बनता है और उसमें पराग अंकुररूप से रहता है।

पञ्चतत्त्वों की सहायता से सब प्रकार के बीज वनस्पतियों को पैदा करते हैं। चन्द्रमा विभिन्न परागों से समस्त वनस्पतियों को उत्पन्न और पोपित करता है।

गुणों के कारण वनस्पतियों मे मुख्य चार प्रकार के भेद होते हैं:—

पहिला, वनस्पति सृष्टि के आरम्भ में पूर्ण सगुत्त्वणी पराग से अमृत, संजीवनी आदि वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। उनके रसों में पूर्ण सत्त्वगुणी रस होने से नाशकारी तमोगुण अंश लेशमात्र नहीं रहता है। विशेपतया ऐसी वनस्पतियाँ सृष्टि के आरम्भ में पैदा होती हैं। इनका रस ग्रहण करने से प्राणीमात्र अधिक काल तक जरत्व और मृत्यु से मुक्त रहते हैं।

दूसरा, पूर्ण तमोगुणी पराग से मीठा तेलिया आदि हलाहल जहरीली रसदार वनस्पतियाँ पैदा होती हैं। उनमें पूर्ण तमोगुणी रस होने से, सतोगुणी रस का बिलकुल अभाव होता है। ऐसी वनस्पतियों का रस ग्रहण करने से मनुष्यादि प्राणी शीघ्र प्राणान्त हो जाते है।

तीसरे, सात प्रकार के रजोगुण परागों, जिनमें सत्त्वगुण विभिन्न भेदों से अधिक और तमोगुणी न्यून होते है, उनसे उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ केला, अंगूर, अनार, मूँग, धान,

गेहूँ, जौ, बादाम इत्यादि है। इनके रसो मे सत्त्वगुण और तमोगुण सम्मिलित होते है, किन्तु सत्त्वगुण अधिक और तमोगुण न्यून होता है। इसलिये इन वनस्पतियों के रसों को ग्रहण करने से अधिकतर प्राणी आरोग्य, प्रसन्न मन निर्भय-युक्त, बलवान, शुक्रशाली, हृदय मे दयावान्, बुद्धिमान और प्रकाशमान होते हैं।

चौथे, सात प्रकार के रजोगुणी पराग, जिनमे तमोगुण विभिन्न भेदों से अधिक और सत्त्वगुण न्यून होते हैं, उनसे उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ, धतूरा, पोस्त', भांग, तम्बाकू, लहसन, प्याज, कुल्थ इत्यादि हैं। इनके रसों मे तमोगुण और सत्त्वगुण मिश्रित होते है। लेकिन तमोगुण अधिक और सत्त्व गुण न्यून होता है। इसलिये इन वनस्पतियों के रसों को ग्रहण करने मे प्राणियां मे विशेपतया उन्माद, रोग, शोक, क्रोध, निर्बलता, व्यभिचार, भीरुपन, निर्दयता और बुद्धि मे अन्धकार उत्पन्न होता है।

इन सब प्रकार की वनस्पतियों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है, चन्द्रमा मे प्रथम प्रकाशयुक्त पूर्ण सत्त्वगुणी पराग पूर्ण सत्त्व-गुणी गर्भकेशर को पृथ्वी के जल-स्थलसंयुक्त पंक स्थान में प्राप्त होकर प्रथम अमृत आदि बूटियाँ और सफेद पुष्पवाले कमल पैदा होते हैं। उनके पश्चात् चन्द्रमा मे पूर्ण तमोगुणी अन्धकारयुक्त पराग तमोगुणी गर्भकेशर को प्राप्त होकर उनसे हलाहल जहरीले रसयुक्त बूटियाँ और नील पुष्पवाले कमल

पैदा होते हैं। उनके पश्चात् चन्द्रमा से सात प्रकार के रजोगुणी पराग जिनके योग में भिन्न भिन्न तरह के सत्त्वोगुण अधिक होते है, वे पृथ्वी की उत्तरायण मे पैदा होनेवाली गर्भकेशर को प्राप्त हुए, जिनसे केला, अंगूर, अनार, हल्दी, पीपल, ईख, श्रीफल, आम, चन्दन, धान इत्यादि बहुत-सी वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई।

उनके पश्चात् चन्द्रमा से सात प्रकार के रजोगुणी पराग जिनमें तमोगुण अधिक होते है, वे पृथ्वी के दक्षिणायन में उत्पन्न होनेवाले गर्भकेशर को प्राप्त हुए। जिनसे धतूरा, अफीम, भाँग, तम्बाकू, लहसन, प्याज, कुल्थ इत्यादि अनन्त वनस्पतियाँ पैदा हुई। इसी प्रकार समस्त वनस्पतियों मे गुणों के अनुसार मुख्य चार प्रकार के भेद होते है। उनमें से जो दो प्रकार की रजोगुणरसयुक्त वनस्पतियाँ है, उनके रसों मे सत्त्वगुण और तमोगुण की न्यूनाधिकता से रसों में रजोगुण के मुख्य दो ही भेद होते हैं, सत्त्वगुण और तमोगुण।

चन्द्रमा के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के सम्बन्ध से (पराग और गर्भकेशर के संयोग से पैदा होनेवाली) वनस्पतियों के जड़ और तने के अङ्गों में रसों के भ्रमण करने की दो गतियाँ होती हैं। शुक्लपक्ष मे तना के भाग में विचरनेवाले रस मे मीठापन और जड़ के भाग मे कड़वापन होता है। किंतु कृष्ण-पक्ष में तना के भाग के रस में कड़वापन और जड़ के भाग मे मीठापन होता है।

इसी प्रकार शुक्ल और कृष्णपक्ष के सम्बन्ध से वनस्पतियों मे मीठे और कड़वे रस तनों और जड़ों के अङ्गों मे बराबर घूमते रहते हैं। शुक्लपक्ष मे तना के भाग मे मीठे रस का चढ़ाव और जड़ के भाग मे कड़वे रस का उतराव और कृष्ण-पक्ष मे तने के भाग में कडवे रस का चढ़ाव, जड़ के भाग मे मीठे रस का उतराव होता है। इसी तरह समस्त वनस्पतियों मे रसों का चढ़ाव उतराव होता रहता है। उन रसों का यथार्थ बोध हमारी जिह्वा नहीं कर सकती, एक प्रकार की छोटी छोटी कीड़ियॉ कर सकती हैं। शुक्ल पक्ष मे वनस्पतियो के तनों का भाग काटने से मीठेपन के कारण उन पर कीड़ियॉ लगती हैं और कृष्णपक्ष में काटने से कड़वे रस के कारण उन पर कीड़ियॉ नही लगती।

गर्भकेशर के सत्त्वगुण, तमोगुण, रजोगुण भेदों से वनस्पतियॉ तीन प्रकार की होती है। उनमे से एक तरह की वनस्पतियॉ ऐसी हैं, जो उत्तरायण के गर्भकेशर मे पेदा होकर बीजो के परिपक्व होने तक जीवित रहती हैं। उसके पश्चात् वे धीरे धीरे सूखकर नष्ट हो जाती हैं। उन वनस्पतियों के सर्वाङ्ग मे विचरनेवाले पराग और गर्भकेशर, बीजों मे समाने पर बीज परिपक्व होते हैं। उनमे पैदा होनेवाले बीज चाहे तने के भाग मे हो चाहे जड़ के भाग मे। बीजों के परिपक्व होने पर वे सर्वाङ्ग सहित सूखकर नष्ट हो जाती है। जैसे धान, मकी, ज्वार, मूँग, अरहर, ककड़ी, कद्दू, तोरिया,

खरबूजा, तरबूज इत्यादि। इनके बीज तने के भाग में होते है। और हल्दी, आलू, विदारीकन्द आदि अनेक वनस्पतियों के बीज कन्दों मे होते है।

विशेषतया ये वनस्पतियाँ उत्तरायण में पैदा होती है और बीजों के परिपक्व होने पर ये धीरे धीरे सूखकर नष्ट हो जाती हैं।

दूसरे प्रकार की वनस्पतियाँ दक्षिणायन के गर्भकेशर मे पैदा होकर बीजों के परिपक्व होने तक जीवित रहती है, पश्चात् वे भी धीरे धीरे सूखकर नष्ट होती है। उन वनस्पतियों को पोषित करनेवाले पराग और गर्भकेशर बीजों के परिपक्व होने पर, बीजों मे समा जाते हैं। उनमें भी पैदा होनेवाले बीज किसी के तने के भाग में और किसी के जड़ के भाग में होते हैं।

गेहूँ, जौ, मटर, मसूर, सरसों, लाई, लहसन, प्याज, तम्बाखू, पोस्ता आदि अनन्त वनस्पतियाँ ऐसी है जो प्रायः दक्षिणायन मे पैदा होती है और वे सब बीजों के परिपक्व होने पर सूखकर नष्ट हो जाती है।

तीसरे प्रकार की जो वनस्पतियाँ है, वे इन दोनो प्रकार की वनस्पतियों की तरह बीजों के परिपक्व होने पर नष्ट नही होतीं। वे अपनी आयु में कितने ही बार फल और बीजों को पैदा करती है। जैसे आम, अनार, खुमानी, आड़ू, अमरूद, लीची, लुकाठ, सेव, नास्पाती, चीड़, बाज, सागून, देवदार,

साल, नारङ्गी, नीवू, अञ्जीर इत्यादि अनन्त वनस्पतियां ऐसी हैं, जो अपनी आयु मे फल और बीजों को कई बार पैदा करती है।

उत्तरायण और दक्षिरायण के सम्बन्ध से इन वनस्पतियो के तने और जड़ के सर्वाङ्ग म विचरनेवाले रस मे दो तरह के भेद होते है। उत्तरायण मे जब पृथ्वी का गर्भकेशर सत्वगुण ग्रहण करता है, तब उनने जो सोमरस (प्राण-पद रस) होता है, वह भी सत्त्वगुण गति में प्रवृत्त होता है जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्ष में सत्त्वगुण गति धारण करता है। वैसे ही गर्भकेशर भी उत्त-रायण मे सत्त्वगुण गति धारणकर प्रथम जड़ के जलकोष मे प्रवेश करता है। वहाँ गर्भकेशर और पराग के सत्त्वगुण का योग होने से सोमरस वनता है।

वह धीरे धीरे जड़ के जलकोप से तने के भाग मे पहुँचकर तने के कोपलियों को उत्पन्न करता है। पराग जड़ के जल कोप से धीरे धीरे वायुकोप मे प्रवेश करता। उसके प्रभाव से सोमरस कोंपलियों मे पत्तियों की उत्पत्ति करता है। पत्तियों मे वायु शोषण की विशेप शक्ति होती है।

पराग वायुकोप से फिर धीरे धीरे गन्धकोप मे जाता है। उसके प्रभाव से तनों के भाग मे पुष्प उत्पन्न होते है और पुष्पों में गन्ध पैदा होती है। पराग गन्धकोप से फिर धीरे धीरे तेजकोप मे जाता है, जिससे तनों के भाग मे सोमरस के कारण फलों की उत्पत्ति होकर उनके गुद्दे धीरे धीरे परिपक्व

होते है। फलों मे सोमरस के परिपक्व होने पर उसके साथ पराग और गर्भकेशर जो पहले से बीजों मे संयुक्त हो जाते है वे बीजों मे उत्पादन शक्ति पैदा करते है। बीजों मे वनस्पतियों के समस्त आकार विस्तार रूप, रङ्ग, रस, गुण सूक्ष्म रूप से बीजों मे एकत्रित हो जाते है। बीजों के परिपक्व होने पर सोमरस वनस्पतियों के सर्वाङ्ग से फलों में जमा हो जाता है और वनस्पतियों के सर्वाङ्ग मे उस समय एक तरह का तमोगुणी रस रह जाता है।

वह अपने विनाश गुण से, बीजों के परिपक्व होने के पश्चात् वनस्पति के तने के भाग से कोंपलें, पत्ते, पुष्प, फल और बीजो को पतित कर तनों के अङ्ग प्रतिअङ्गों से उतरते हुए दक्षिणायन में जड़ के भाग मे उतरकर प्रवेश करता है। उसी काल में वृक्ष पतझड़ होते है। वह रस जड़ के भाग मे उतरकर पराग की सहायता से दक्षिणायन में जड़ के विस्तार में उतरता है। फिर दक्षिणायन के अन्त और उत्तरायण के आरम्भ मे वनस्पतियों को जीवित रखनेवाला पराग सत्त्वगुण धारण करता है और वनस्पतियो मे फिर सोमरस की उत्पत्ति होकर वे फूलती फलती है। वे वनस्पतियाँ प्रथम वनस्पतियों की तरह बीजों के परिपक्व होने पर विनाश नहीं होती। वे अपनी अवस्था मे उपर्युक्त क्रम से कई बार फल और बीजों को पैदा करती है।

समस्त वनस्पतियों में सोमरस के प्रधान छै भेद होते है।

अर्थात् मीठा, कड़वा, खट्टा, चलमला, खारा और चरपरा। बाकी समस्त रस इन्हीं रसों के योगभेद से वनस्पतियों मे पैदा होते है। परागों के मुख्य ४ भेद होते है और गर्भकेशर के दो भेद, इन्हीं छ: भेदों से उपर्युक्त छै रस पैदा होते हैं।

समस्त वनस्पतियों मे तनों और जड़ो की शक्लें दो तरह की होती हैं। वनस्पति सृष्टि मे कुछ वनस्पतियाँ ऐसी है, जिनके तनों के भाग मे टहनियाँ नही होतीं, जैसे ईख, मक्की, गेहूँ, जौ, धान, मँड़वा इत्यादि। और कुछ वनस्पतियाँ ऐसी है, जिनके तने के भाग में टहनियाँ होती है, जैसे आम, अनार, बादाम, खुमानी, आड़ू, इत्यादि। तने की तरह उनमे जड़े भी दो प्रकार की होती है।

कुछ वनस्पतियो की सिर्फ एक जड़ होती है, जैसे गाजर, मूली, शलगम इत्यादि। ऐसी जड़ों को मूसल जड़ कहते है। और कुछ वनस्पतियों की जड़े पृथ्वी के अन्दर जाल की तरह फैली होती है, जैसे गेहूँ, जव, धान, बाजरा इत्यादि। ऐसी जड़ों को झकरा जड़ कहते है।

समस्त वनस्पतियो के बीजो मे सूक्ष्म रूप से जैसा स्वाद-युक्त रस होता है, वह वृक्षरूप में प्रवृत्त होकर (चन्द्रमा, पृथ्वी, जल से) वैसा ही रस ग्रहण करता है। और बीज मे सूक्ष्मता से जैसा रङ्ग विद्यमान रहता है, वृक्षों मे उसी का विकास होता है। पृथ्वी मे इसी तरह समस्त वनस्पतियाँ पैदा होती हैं।

वनस्पति

उत्तरायण और चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों मे सोमरस का चढ़ाव होता है। दक्षिणायन और कृष्णपक्ष मे सोमरस का उतराव होता है। लेकिन उत्तरायण और शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों मे उर्वराशक्ति न्यून रहती है। इसलिये उनमे वनस्पतियों के शरीर अधिक दृढ़ नही रहते। दक्षिणायन और कृष्णपक्ष में वनस्पतियों मे उर्वरा शक्ति सबल होकर रहती है। इसलिये उनमें वनस्पतियों के शरीर अधिक दृढ़ रहते हैं।

सूर्य चैतन्यता अथवा शुक्र का भण्डार है। उससे वह अमृत अथवा सोमरस बनकर चन्द्रमा मे उतरता है। चन्द्रमा से वह पराग बनकर पृथ्वी मे उतरता है और पृथ्वी की गर्भ-केशर से संयुक्त होकर वनस्पतियों को पैदा करता है। वनस्पतियों में वह शरीरपोषक रस बनता है। जो प्राणियों के आहार के साथ पहुँचकर उनके शरीर का पोषण करता है और पुरुष प्राणियों में शुक्र की वृद्धि करता और स्त्री प्राणियों शुक्र रज और दूध बनता है। इसलिये वनस्पतियों को हम प्राणियों का दूसरा शरीर कह सकते है।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

विद्वानों की सम्मतियाँ

श्रीब्रह्मचारी चेतनस्वरूपजी वेदान्ताचार्य, दर्शनाचार्य, न्यायाचार्य, हृषीकेश—

विश्वदर्शन संज्ञक पुस्तक श्रीमान् पं० रामरत्नजी का उपज्ञ है। मैंने इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक सावधान मन से श्रवण किया, प्रत्येक विषय का निरूपण अश्रुतपूर्व प्रक्रिया से हुआ है। ग्रन्थकर्त्ता का मुख्य तात्पर्य अखण्डैकरस सच्चिदानन्द ब्रह्म में है। सृष्टि की तथा सृष्ट्यन्तर्गत व्यष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय का वर्णन विलक्षण रूप से किया गया है, जिससे सुनकर आश्चर्य होता है। तथापि यह कृति साध्वी है।

यया यया भवेत् पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात् साध्वी सा चानवस्थिता॥

ग्रन्थकर्त्ता ने इस प्रकिया को अपने मन से कल्पना नहीं किया है, किन्तु आजानसिद्ध सूर्यसंयम से हुई संप्रज्ञात समाधि में इनको जैसा जैसा त्रिभुन का साक्षात् हुआ है, उसी को इन्होंने ग्रन्थ में निबद्ध किया है। वह भी अंशतः साकल्येन नहीं। क्योंकि आप कहते हैं कि "मै जो कुछ देखता हूँ, सारे को जन्मभर लिखकर भी निबद्ध नहीं कर सकता, थोड़े से थोड़ा

लिखता हूँ" इस वचन से यह उनके ज्ञान का ज्ञेयैक देश मात्र है। इसलिये सर्वशास्त्र के विषयों को सर्वशास्त्र से विलक्षण रीति से प्रतिपादन किया गया है। विशेषतः सृष्टि की उत्पत्ति के चिन्तक प्राच्य और पाश्चात्य वैज्ञानिक लोग, प्राचीन और नवीन गणक, भू और खगोल के तत्त्ववेत्ता, शरीर-रचनासम्बन्धी विज्ञान में विशारद तथा वनस्पतिविद्या में दक्ष लोग इस ग्रन्थ को पढ़कर चकित और व्यपगत-मद होंगे।

पं० जी को हम धन्यवाद देते हैं और जनता से आग्रह करते हैं कि वह इस ग्रन्थ को सादर पढ़े और मनन करे।

श्रीस्वामी तपोवनम्‌जी हृषीकेश क्षेत्र—

श्रीमान् पं० रामरत्नजी का लिखा हुआ विश्वदर्शन नामक ग्रन्थ को मैंने देखा है। उसमे एक विलक्षण नवीन शैली से विश्वसृष्टि का निरूपण करते हैं, ग्रन्थ जो समीचीन और निर्दोष रीति से अपने विषय को प्रतिपादन करता है।

पं० जी की प्रतिभा और विचार-शक्ति प्रशंसनीय है। आशा करता हूँ कि इससे पाठकवर्ग उपकार उठाएँगे।

आदि अन्त मैंने विशेष करके देखा है। ग्रन्थ वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादक होने से ऐसे ग्रन्थ के प्रचारण मे सज्जनों का प्रोत्साहन अवश्य होना चाहिये।

श्रीगोस्वामी गणेशदत्तजी प्रधान मन्त्री अ० भा० सनातनधर्म महासभा, बनारस—

श्रीमान् पं० रामरत्न थपल्याल के निर्माण किये हुए विश्व-दिग्दर्शन नामक पुस्तक को देखा। इस पुस्तक के सम्बन्ध में मेरे मित्रवर्ग ब्रह्मचारी चेतनस्वरूप व स्वामी तपोवनम् विद्वान् अनुमतिदाताओं ने अच्छी सम्मति दी है। जिनके आधार पर मै इस पुस्तक का पूर्णतया समर्थन करता हूँ कि यह नवीन विचार की पुस्तक जनता के लिये बड़ी लाभदायक है।

श्री पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, पञ्चतीर्थ, प्रोफेसर सर हु० दि० जैन महाविद्यालय, इन्दौर—

श्रीमान् पं० रामरत्न थपल्याल कृत विश्वदर्शन पुस्तक का मैंने अच्छी तरह अवलोकन किया है। पंडितजी के स्वानुभवों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। वर्तमान में उपलब्ध दर्शनों से इसमें बहुत कुछ विशेषता मेरे देखने में आई है। हिन्दी साहित्य में अभी दार्शनिक पुस्तकों का एक प्रकार से अभाव ही है। यह पुस्तक उस अंश की नवीनता के साथ पूर्ति कर रही है। आशा है, भारतीय जगत् उक्त पुस्तक का आदर करेगा और विद्वान् लेखक के ज्ञान तक को सफल करेगा।

हिन्दी प्रचारिणी सभा शिमला—

इसमे किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नही है कि श्री पं० रामरत्नजी थपल्याल ने इस ग्रन्थ को लिखकर बड़े साहस और उपकार का कार्य किया है। पुस्तक के अवलोकन से प्रतीत होता है कि सब समावेश पण्डितजी की मानसिक शक्तियों का सङ्गठन है। इस पुस्तक के लिये उन्होंने, जैसा कि उनका कथन है, किसी अन्य ग्रन्थ की सहायता नहीं ली, केवल अपने बुद्धिबल द्वारा ही सब विचार गणित-क्रियाओं के फलाफल का निरूपण किया है।

इस ग्रन्थ मे शरीररचना, तत्त्वविज्ञान, खगोल, वनस्पतिविद्या इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला है। हिन्दी प्रचारिणी सभा को प्रसन्नता है कि उन्हे इस पुस्तक को इस स्थिति में देखने का अवकाश प्राप्त हुआ है। पण्डितजी ने इस पुस्तक को रोचक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है और वे इसमें पूर्ण सफल हुए है। पुस्तक अभिनन्दनीय है। पुस्तक की भाषा सरल और सुमानी है। विद्वान् समुदाय इस ग्रन्थ से बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकता है। जनता इसको अपनाकर लाभ उठाएगी।

श्री पं० नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ, महाविद्यालय ज्वालापुर, हरद्वार—

विश्वदर्शन तो अनुभव की बात है, जो देखने की शक्ति

रखता है। ग्रन्थ के देखने से स्पष्ट है कि लेखक ने चिर-काल तक पूर्ण अनुभव के पश्चात् अपना मन्तव्य प्रकाशित किया है। तथापि लेखक महोदय ने इस गहन तत्त्व को प्रकट करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। तदर्थ धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री पं० गयाप्रसादजी शुक्ल एम० ए०, प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज, देहरादून—

पण्डित रामरत्न थपल्याल ने अपनी "विश्वदर्शन" पुस्तक लिखकर हिन्दी का बहुत उपकार किया है। यह पुस्तक तत्त्वविज्ञान, शरीररचना, खगोल, वनस्पतिविद्या इत्यादि विषयों का बड़े मार्मिक ढंग से विवेचन करती है तथा मौलिक विचारों से पूर्ण है। आशा है, हिन्दी जगत् में इसका यथेष्ट आदर होगा।

श्रीपण्डित गजाधरजी डबराल, तिमली वानप्रस्थ, कैलाशआश्रम—

श्रीयुत पं० रामरत्नजी की निर्मित विश्वदर्शन पुस्तक के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इस प्रकार की पुस्तक का लिखना विना दूसरे ग्रन्थों की सहायता के असम्भव नहीं तो बहुत कठिन जरूर है, और यह प्रमाणित है कि यह पुस्तक पं० जी के मानस-सरोवर की स्वतन्त्र धारा है। इसलिये मैं पं० जी की बुद्धिमत्ता व ज्ञान की प्रशंसा के साथ आप के बुद्धि-विलास के वास्ते परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ। और यह भी अनुमान

करता हूँ कि यदि पं० रामरत्नजी को सत्पुरुषों द्वारा पूरा उत्साहित किया जाय तो इस लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि इनके हृदयागार में इससे और भी अधिक भण्डार है, वह भी लोकोपकारार्थ विकसित हो जावेगा।

मैं सहर्ष अपनी अनुमति प्रकट करता हूँ कि यह पुस्तक सर्वसाधारण के उपयोगी है।

श्री प० हरिदत्त जी शास्त्री, राजगुरु विद्यारत्न, टिहरी--

प्रायः समय-समय पर विद्वानों के अभिनव आविष्कार निबन्ध आदि देखने का सुअवसर मिल जाता है। किन्तु आज पं० रामरत्नजी थपल्याल का विश्वदर्शन (जोकि उनकी तपस्या या इष्टोपासना का फल मुझे ज्ञात हो रहा है) पढ़ने से मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ यद्यपि उक्त पं० जी ने इस अपने आविष्कार को किसी दूसरे आचार्यप्रणीत ग्रन्थ का अनुयायी नहीं रक्खा है, केवल इस ब्रह्माण्ड की रचना जो उनको इष्टदेव के प्रसाद से अनुभव हुआ, उसे वैज्ञानिक प्रणाली पर चारुरूप से सिद्ध कर दर्शाया है। पाठक इसके पढ़ने से इस आविष्कार की उच्चता समझ लेंगे। मैं उस चित् शक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि इस ग्रन्थ से हमारे भारतीय पूर्ण लाभ उठाकर पं० जी को यशस्वी बनावेंगे।

श्रीपं० राघवाचार्य जी शास्त्री, विद्यालङ्कार, मुख्याधिष्ठाता दर्शन-महाविद्यालय, मुनि की रेती--

महात्मा रामरत्न ने इस पुस्तक में जो पद्धति दिखाई है, उसको देखकर हम अनुमान करते हैं कि इन्होंने कोई सिद्धि प्राप्त करके उक्त ग्रन्थ बनाया। और इन्होंने लोकोत्तर बुद्धि को प्राप्त कर नई शैली से (नहीं होता हुआ भी ऐसा) ग्रन्थ लोगों की प्रसन्नता के लिये बनाया। उक्त ग्रन्थ अति उपकारक प्रतीत होता है। और इस ग्रन्थ में अद्वैत को लेकर के सम्पूर्ण तत्त्वों को दिखलाया है। इसलिये उक्त शास्त्र बड़ा उपकारक है।

आर्यमित्र ता० १५ फरवरी आर्य संवत्सर १९७२९४९०३४ पृष्ठ ६ तीसरे कालम में--

हिन्दी जगत् मे यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है और इसमे प्रकटित बहुत से विचार मौलिक प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ का सर्वत्र आदर होना चाहिये। इसमें मतमतान्तर का नाम नहीं, सब बातें दार्शनिक ढंग से लिखी गई हैं। गढ़वाल के एक सुपुत्र ने इस प्रकार की विचित्र ग्रन्थ रचना की, इसलिये धन्यवाद और सहस्रश' साधुवाद।

अर्जुन ता० १२ फरवरी १९३४ ई० पृष्ठ २ के दूसरे कालम में--

इस पुस्तक मे दर्शन, विज्ञान, आयुर्वेद खगोल, आदि विषयों का क्रमबद्ध समावेश है। एवं सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का वर्णन २१ अध्यायों में समाप्त हुआ है। पुस्तक अनोखेपन मे आदरणीय है। मनुष्य-रचना और मनुष्य

र्विन का विषय भी बड़े महत्त्व का है। पुस्तक उपादेय है। प्रस्तुत पुस्तक की उपज ग्रन्थकर्ता के एकमात्र स्वानुभव से हुई है। गहन विषय होने पर भी भाषा सरल है।

गढ़वाली—यह पुस्तक विश्व की विजय ध्वनि है।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता ने विश्वदर्शन की कई प्रतियाँ खरीदकर लिखा है:—वास्तव में पुस्तक विश्वदर्शन हिन्दी संसार में अद्वितीय है।

सनातनी, आर्यसमाज, बौद्ध, सिख, जैन, ईसाई मुसलमन सब धर्मों के विद्वानों ने पुस्तक को पसन्द किया है।

श्रीमान् गयाप्रसादसिंह मे० गत एसेम्बली और सर योगन्द्रसिंह मिनिस्टर पंजाब गवर्नर ने लेखक को स्वामी का पद दिया है।

श्रीमान् महाराजाधिराज मैसूर ने पुस्तकरचना पर धन्यवाद के साथ पुरस्कार भेजा है।

श्रीमान् महाराजाधिराज बड़ौदा ने पुस्तक-रचना पर हार्दिक धन्यवाद दिया।

श्री महन्त लक्ष्मणदाम जी देहरादून ने पुस्तकरचना पर अच्छा पुरस्कार दिया।

श्रीमती राजमातेश्वरी श्री गजराराजा गवालियर ने पुस्तकरचना पर पुरस्कार दिया।

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणा उदयपुर ने पुस्तक-रचना पर पुरस्कार दिया।

श्रीमान् महाराज साहब किशनगढ़ ने पुस्तकरचना पर पुरस्कार दिया।

श्रीमान् सरस्वतीचन्द कामदार साहब श्रीमती महारानी साहिबा जयपुर ने ३५२) रु० प्रथम संस्करण की छपाई में प्रदान किये। और भी बहुत से पुरस्कार और-धन्यवाद पुस्तक पर मिले हैं।